कुहासे के पार एक नजर

जम्मू-कश्मीर 1947 विलय और परवर्ती घटनाक्रम

दया सागर

कुहासे के पार एक नजर

जम्मू-कश्मीर
1947
विलय और परवर्ती घटनाक्रम

दया सागर

जम्मू-कश्मीर
1947
विलय और परवर्ती घटनाक्रम

प्रथम संस्करण 2012

रूपये 30/-

अनुवाद :
आलोक द्विवेदी

प्रकाशक
जम्मू-कश्मीर अध्ययन केन्द्र
करगिल भवन, अम्बफला काम्प्लेक्स, जम्मू

अनुक्रम

१. जम्मू और कश्मीर का विलय वैधानिक प्राधिकार के तहत 1

२. जम्मू और कश्मीर रियासत के लोगों की इच्छा 4

३. अन्य राज्यों के समान ही था महाराजा द्वारा हस्ताक्षारित विलय पत्र 6

४. विलय पत्र के साथ महाराजा का पत्र 8

५. तर्कसंगत नहीं थी माउंटबेटन के पत्र की विषयवस्तु 11

६. आक्रमणकारियों से जम्मू और कश्मीर की जमीन मुक्त
कराने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ ने कुछ नहीं किया 15

७. महाराजा को शेख अब्दुल्ला के सामने असहाय बना दिया 17

८. दिल्ली की शह पर शेख ने महाराजा का मजाक बना दिया 19

९. जून १९४९ में महाराजा ने अस्थायी तौर पर
जम्मू-कश्मीर छोड़ा 23

१०. अंतिम सत्ता महाराजा या/और रीजेंट में निहित थी 25

११. प्रजा सभा- संवत १९९९ का जम्मू और कश्मीर का
संविधान- संविधान सभा- विधान सभा 28

१२. केवल अभिलिखित (रिकॉर्डेड) और स्वीकृत
गतिविधियों पर ही ध्यान दें 40

१३. अगर जम्मू और कश्मीर का संविधान वैधानिक है,
तो इसके संशोधन अवैध कैसे? 46

१४. वोट की दौड़ में घाटी केंद्रित नेताओं की आंतरिक प्रतिस्पर्धा 48

१५. जस्टिस सगीर अहमद की रिपोर्ट अगंभीरता का प्रमाण 49

१६. भारत का अनिवार्य अंग है जम्मू-कश्मीर तो पीडीपी
के स्वशासन के लिए जगह कहां? 52

१७. भारतीय संविधान की धारा ३७० अस्थायी है 55

१८. विशेष राज्य सूची के तौर पर देखा जा सकता है
जम्मू-कश्मीर का संविधान 60

१६. धारा ३७० को हथियार के तौर पर इस्तेमाल
करते हैं अलगाववादी 61

आमुख

इस बात का पता लगाए जाने की जरूरत है कि किसी राजनेता को किसी मुस्लिम या किसी कश्मीरी मुस्लिम के शोषण का मौका दिए बिना धारा ३७० को कैसे खत्म किया जा सकता है। क्या भारतीय संसद हमेशा जम्मू और कश्मीर की विधानसभा की ओर लाचारी भरी नजरों से देखती रहेगी, यह अगला सवाल है जिस पर जानकारों को विचार करना है। इस धारा के खात्मे के विचार को न केवल तकनीकी तौर पर बल्कि वैचारिक तौर पर भी आगे बढ़ाना है, खास तौर पर कश्मीर घाटी के लोगों के बीच।

अगर भारत इस मामले में लंबी अवधि की शांति का इच्छुक है तो सामान्य तकनीकियों से काम नहीं चलेगा। “कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति एक बहुत सीधा सा सवाल उठा सकता है, जब २६ जनवरी १९५० से ही धारा ३७० लागू थी तो फिर अगस्त १९५२ में दिल्ली समझौते की जरूरत क्या थी? क्या जवाहर लाल नेहरू या उनका मंत्रिमंडल हमारे देश के संविधान या भारत की संसद या जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा (कंस्टीट्यूएंट एसेंबली जिसने ३१ अक्टूबर १९५१ से काम करना शुरू किया) से ज्यादा बड़ा था?”

इस बात में कोई शक नहीं है कि इस समझौते पर केंद्रीय संसद में ७ अगस्त १९५२ को विचार किया गया और इसे स्वीकार किया गया। जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा ने इस व्यवस्था पर विचार किया और अंततः २१ अगस्त १९५२ को चर्चा के प्रस्ताव (मोशन ऑफ अप्रोच) को स्वीकृत किया। संसद के बाद जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा ने इस पर स्वीकृति प्रस्ताव (मोशन ऑफ एक्सेप्टेंस) को अंगीकार कर लिया।

यह कहा जा सकता है कि दिल्ली समझौता शेख मुहम्मद अब्दुल्ला की इच्छा थी और इसे जवाहर लाल ने समर्थन दिया था क्योंकि शेख को तब भी इस बात का भय था कि जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा उनके सामने पूरी तरह से अपनी इच्छाओं का समर्पण नहीं करेगी। इसलिए दिल्ली समझौते पर जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा में विचार किये जाने से पहले संसद में विचार किया गया। यही नहीं, अगर जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा ने अपनी सभी नीतियों और राज्य संविधान के सभी प्रारूप अनुच्छेदों और धाराओं को अंतिम रूप दे दिया था, तो इसे राज्य के संविधान को स्वीकार करने और लागू करने में पांच और साल क्यों लग गये?

“जब १६७५ में शेख वहां के चीफ मिनिस्टर बने तो उन्होंने कानूनों की स्थिति की समीक्षा कराई और पता चला कि किसी भी सुधार निरस्तीकरण संशोधन की जरूरत नहीं है। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि तब तक किए गए किसी भी विस्तार का निहितार्थ परिणाम खराब नहीं था। आगे कोई यह भी पूछ सकता है कि इंदिरा गांधी ने जम्मू कश्मीर के एक व्यक्ति के साथ समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए क्या संसद से अनुमति हासिल की थी? क्या उन्होंने जम्मू कश्मीर की जनता को अपने विश्वास में लिया जिनमें से कुछ को तब तक यह पता था कि साल १६५३ में शेख को विद्रोह जैसे किसी मामले के तहत निकाल दिया गया है?“ अगला सवाल यह हो सकता है कि किस तरह राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय महत्व से जुड़े मामले पर कोई व्यक्ति व्यक्तिगत स्तर पर लोगों को शामिल कर समझौते कर सकता है? १३ नवंबर १६७४ को तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के बीच समझौता हुआ। अधिक से अधिक उसे शेख अब्दुल्ला और इंदिरा गांधी के बीच का समझौता या कांग्रेस के बीच का समझौता कहेंगे।

लेकिन इस सब के लिए जम्मू और कश्मीर के तीनों ही प्रमुख क्षेत्रों (जम्मू, लद्दाख और कश्मीर घाटी) के लोगों को कीमत चुकानी पड़ी और आज तक ये लोग इसकी कीमत चुका रहे हैं। ”इसी तरह उन विधायकों के कृत्यों पर सवाल खड़े किये जा सकते हैं जो २६ जून २००० को जम्मू कश्मीर एसेंबली में थे जब राज्य स्वायत्तता समिति (स्टेट ऑटोनमी कमिटी) की रिपोर्ट को स्वीकार करते हुए संकल्प पारित किया गया और १३ नवंबर १६७४ के उस इंदिरा-शेख कश्मीर समझौते की स्थिति पर कोई मत प्रकट नहीं किया गया जिसे समीक्षा की एक कवायद के बाद फाइलों में कैद कर रख दिया गया है।”

इस तरह के सभी सवालों का जवाब दिये जाने की जरूरत है ताकि जम्मू और कश्मीर (खास तौर पर कश्मीर घाटी) का आम आदमी इतना सक्षम हो जाये कि वह जम्मू कश्मीर के मामलों और उसकी जरूरतों के बारे में अपनी एक राय बना सके।”

दया सागर

जम्मू और कश्मीर का विलय वैधानिक प्राधिकार के तहत

१८५७ की क्रांति के तुरंत बाद ईस्ट इंडिया कंपनी (यूनाइटेड किंगडम की संसद ने २ अगस्त को भारतीय शासन अधिनियम १८५८ पारित किया और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सत्ता को समाप्त कर दिया और इसके कामकाज को ब्रिटिश राज को दे दिया गया ताकि भारत को एक बेहतर शासन प्रदान किया जा सके), ब्रिटिश भारत और भारतीय देशी रियासतों के प्रति ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाये गये नजरिये से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ब्रिटिश राज को यह आभास हो गया कि अगर ब्रिटिशों को भारत में रहना है तो १) भारतीयों को धर्म स्थानीय आस्था परंपरा भौतिक हितों क्षेत्रों के आधार पर बांटना होगा, २) भारतीय राजाओं को लोगों से दूर करना होगा, ३) भारतीय राजाओं को उनकी व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करानी होगी और बदले में ब्रिटिश आगे आने वाले दिनों में उनके खिलाफ उठने वाले जन आंदोलनों के उभार पर नियंत्रण करने में सक्षम हो सकेंगे। लेकिन ब्रिटिशों पर दबाव कमजोर नहीं हुआ।

भारतीय शासन अधिनियम १९०९ (इंडियन काउंसिल्स एक्ट १९०९), भारतीय शासन अधिनियम १९१९ (जिसने स्थानीय देशी रियासतों को राज्य परिषद् के जरिये भारत सरकार में सहभागिता प्रदान करने की कोशिश की) और भारतीय शासन अधिनियम १९३५ उन दबावों के ही नतीजतन सामने आये जो ब्रिटिश भारत और भारतीय देशी रियासतों के लोगों ने आजादी के लिए बनाया।

भारतीयों ने द्विराष्ट्र सिद्धांत के आधार पर ब्रिटिश भारत का विभाजन स्वीकार कर लिया ताकि उनके यहां से जाने में होने वाली और देरी को रोका जा सके। जो लोग ब्रिटिशों की नीयत के बारे में अधिक जानना चाहते हैं वे ब्रिटिश राज की ओर से साल १९०५ से लेकर १९४६ के ब्रिटिश कैबिनेट मिशन तक लगातार की गई कवायद का अध्ययन कर सकते हैं। ब्रिटिशों ने पहले भारतीयों को हिंदू और मुस्लिम के बीच बांटने की कोशिश की थी। लार्ड कर्जन द्वारा साल १९०५ में बंगाल को पूरी तरह से सांप्रदायिक आधार पर बांट कर यह असफल कोशिश की गयी थी। ब्रिटिश उस समय हिल गये थे जब साल १८५७ में हिंदू और मुस्लिम मिल कर भारतवासियों के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ उठ खड़े हुए थे। साल १९०९ में पंथ आधारित पृथक निर्वाचक मंडलों का लाया जाना एक ऐसा नपा-तुला जोखिम था जो ब्रिटिशों ने

भारतीय स्वतंत्रता की लहरों की शक्ति को कमजोर करने के लिए उठाया था। लेकिन हिंदू-मुस्लिम एकता को इतनी आसानी से बिखेरा नहीं जा सकता था। "लेकिन भी इसके बाद ब्रिटिश भारत में मुस्लिम लीग का गठन एक तरह से ब्रिटिशों की जीत ही था।" और आखिरकार ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किया गया इंडियन इंडिपेंडेंस एक्ट १६४७ (भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १६४७) एक तरह से "लार्ड माउंटबेटन के ब्रिटिश भारत के विभाजन के ३ जून १६४७ की योजना का अनुमोदन था, जो खास तौर पर भारत के विभाजन भारतीय स्वतंत्रता ब्रिटिशों की वापसी की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए गवर्नर जनरल बना कर भारत भेजे गये थे"।

ब्रिटिश राज ने जान बूझ कर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य में किंतु ब्रिटिश भारत के बाहर स्थित भारतीय देशी रियासतों पर ब्रिटिश सर्वोच्चता को भारतीय डोमिनियन के पक्ष में खत्म नहीं किया।

ऐसा न करने के पीछे कोई वजह नहीं थी। पाकिस्तान का जन्म एक नये राज्य देश डोमिनियन के तौर पर हुआ, लेकिन भारतीय डोमिनियन का जन्म नहीं हुआ, इसे ब्रिटिश गुलामी की जंजीरों से मुक्ति हासिल हुई। चाहे जैसे भी हो, परिस्थितियों ने भारतीयों को इस बात के लिए मजबूर किया कि वे ब्रिटिश योजना को अपनी नियति के तौर पर स्वीकार कर लें। यद्यपि भारतीय देशी रियासतों के अधिकांश राजा स्वतंत्र भारतीय डोमिनियन के साथ जुड़ने के पक्ष में थे। स्वतंत्र भारत के साथ-साथ पाकिस्तान का भविष्य का संविधान अभी तैयार किया जाना बाकी था।

इन रियासतों के राजा निश्चित तौर पर अपने निजी सामाजिक/आर्थिक सुरक्षा के लिए चिंतित थे और शायद कुछ राजाओं को स्वतंत्र भारतध पाकिस्तान में सत्ता प्राप्ति का लालच भी था। उन मौजूदा परिस्थितियों के अधीन और क्षेत्रीय जरूरतों की वजह से ब्रिटिश भारत के बाहर स्थित भारतीय देशी रियासतों के राजाओं में से तीन-चार फीसदी से भी कम ही भारत से बाहर रहने या पाकिस्तान डोमिनियन में शामिल होने की उम्मीद कर सकते थे समर्थ हो सकते थे, वह एकमात्र चीज जिसकी चाह उन्होंने की होगी वह थी अपनी व्यक्तिगत संपत्ति और सामाजिक स्थिति की सुरक्षा, क्योंकि उन्हें यह अच्छी तरह से पता था कि भारत के एक लोकतांत्रिक गणराज्य बन जाने के बाद वे लोग अपनी जनता को लोकतांत्रिक अधिकार देने से मना नहीं कर सकेंगे।

दूसरी ओर भारत विलय करने वाले राजाओं के भविष्य की स्थिति को तब तक

परिभाषित नहीं कर सकता था जब तक कि भारतीय संविधान नहीं लिखा जाता। अतः भारत को ऐसी परिस्थितियों में आजादी मिली, जहां ब्रिटिश व्यवस्था से बाहर दिक्कत पैदा करने वाली कुछ चिंताएं थीं जिनका हल किए जाने की आवश्यकता थी और पाकिस्तानी डोमिनियन की सीमाएं भी अभी अंतिम रूप से तय की जानी थी, खास तौर पर पंजाब में।

भारतीयों ने विभाजन को ब्रिटिश संसद के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १९४७ के परिणाम के तौर पर स्वीकार किया। इसी तरह यह भी स्वीकार किया जाना था कि ब्रिटिश भारत की सीमा के बाहर ब्रिटिश साम्राज्य के देशी रियासतों के राजाओं को ही यह तय करना था कि वे भारतीय डोमिनियन को स्वीकार कर रहे हैं या पाकिस्तानी डोमिनियन को स्वीकार कर रहे हैं या कोई अन्य फैसला कर रहे हैं। ब्रिटिशों ने इन राजाओं को सलाह दी थी कि वे अपने हित के हिसाब से किसी भी डोमिनियन के साथ जुड़ जायें। यानि इन रियासतों के लोगों को नहीं बल्कि वहां के राजाओं को यह तय करना था कि वे किस डोमिनियन के साथ जुड़ रहे हैं और जम्मू कश्मीर के महाराजा ने भारत के साथ मिलने का फैसला किया। २६ अक्टूबर १९४७ को उन्होंने सभी मामलों के लिए बिना किसी शर्त के अपनी संप्रभु सत्ता भारत को समर्पित कर दी, जो ब्रिटिश परम सत्ता ने भारत के पक्ष में नहीं दी थी, लेकिन निश्चित तौर पर खत्म हो चुकी थी।

जम्मू और कश्मीर रियासत के लोगों की इच्छा

यद्यपि शामिल होने से संबंधित फैसला जम्मू और कश्मीर के महाराजा को लेना था, वहां की जनता को नहीं, फिर भी १९४२ से लेकर १९४७ के अगस्त तक की घटनाओं में कहीं भी इस तरह का संकेत नहीं मिलता कि ब्रिटेन के भारत के साम्राज्य के इस मुस्लिम बहुमत वाले राज्य की जनता ने भारत में शामिल न होने के पक्ष में या पाकिस्तान में शामिल होने के पक्ष में अपने विचार प्रकट किये या इसके बारे में आंदोलन किया।

नेशनल कांफ्रेंस, मुस्लिम कांफ्रेंस और कांग्रेस- जम्मू और कश्मीर में ये तीन प्रमुख राजनीतिक दल थे। नेशनल कांफ्रेंस का कश्मीर घाटी में अच्छा प्रभाव था, जबकि कांग्रेस का जम्मू प्रांत में बेहतरीन जनाधार था। नेशनल कांफ्रेंस का लद्दाख क्षेत्र और जम्मू प्रांत में कहीं भी अधिक प्रभाव नहीं था। लेकिन जवाहर लाल नेहरू के प्रभाव में कांग्रेस ने जम्मू प्रांत में स्वयं को कम चर्चा में रखा, ऐसे में नेशनल कांफ्रेंस को जम्मू प्रांत में भी कुछ समर्थन मिल सका।

नेशनल कांफ्रेंस (१९३९) के गठन के बाद मुस्लिम कांफ्रेंस को जम्मू और कश्मीर में कुछ छिट पुट समर्थन हासिल था। किसी भी राजनीतिक दल ने भारत के खिलाफ आवाज नहीं उठाई। नेशनल कांफ्रेंस ने साल १९४६ में कश्मीर छोड़ो का नारा दिया था (कश्मीर केंद्रित), जो भारत के खिलाफ नहीं बल्कि जम्मू और कश्मीर के महाराजा के खिलाफ था। जवाहर लाल नेहरू की सरकार के दबावों और शेख मुहम्मद अब्दुल्ला की ओर से वचन आश्वासन दिये जाने के बाद उन्हें और उनके अधिकांश साथियों को महाराजा की सरकार द्वारा २९ सितंबर १९४७ को विभिन्न जेलों से छोड़ दिया गया।

शेख अब्दुल्ला ने महाराजा हरि सिंह को २६ सितंबर १९४७ को लिखे गए पत्र में अन्य बातों के अलावा कहा, “इस बात के बावजूद कि भूतकाल में क्या हुआ है, मैं महाराज को यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि मैंने और मेरी पार्टी ने कभी भी महाराज या उनकी राजगद्दी या उनके राजवंश के प्रति कभी भी अनिष्ठा की भावना नहीं रखी है.... महाराज मैं अपने और अपने संगठन की ओर से आपको पूर्ण निष्ठा व समर्थन का आश्वासन देता हूं...”. पत्र खत्म करने से पहले महाराज मैं एक बार फिर अपनी अविचल निष्ठा का आश्वासन देता हूं और ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह मुझे महामहिम के संरक्षण में वह अवसर प्रदान करे कि इस राज्य को शांति, समृद्धि और

सुशासन हासिल हो सके। “अतः, यद्यपि राजा द्वारा किसी डोमिनियन में शामिल होने के फैसले के बारे में (भारत द्वारा अपनाये गये) भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १९४७ और भारतीय शासन अधिनियम १९३५ के प्रावधानों के मद्देनजर जनमत का कोई मतलब नहीं था, लेकिन इसके बावजूद यह कहा जा सकता है कि जम्मू और कश्मीर रियासत के जनमत यहां तक कि मुस्लिम बहुमत की राय भी भारतीय डोमिनियन में इसके शामिल होने के खिलाफ नहीं थी।”

एक अक्टूबर १९४७ को श्रीनगर के हजुरी बाग में एक भारी भीड़ को संबोधित करते हुए नेशनल कांफ्रेंस के प्रमुख शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने राज्य के भविष्य के बारे में अपना विचार स्पष्ट किया था जब उन्होंने कहा, “जब तक मेरे शरीर में खून की आखिरी बूंद है तब तक मैं द्विराष्ट्र सिद्धांत में विश्वास नहीं करूंगा।” ऐसा हो सकता है कि जम्मू और कश्मीर के मामलों के संचालन की स्थिति १४ अगस्त को भौगोलिक स्थिति विलय और स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माण के बीच की अवधि में तात्कालिक स्थानीय शासन के बारे में जवाहर लाल नेहरू और महाराजा के विचार में मतभेद आदि की वजहों से इससे जुड़े लोगों की महात्वाकांक्षाओं ने जम्मू और कश्मीर को और भी अधिक विवादों व भ्रमों की ओर धकेल दिया।

लेकिन अगर कोई यह मानता है कि भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १९४७ के जरिए नियति लिखी गई तो कोई इस बात का विरोध नहीं कर सकता कि जम्मू कश्मीर के किसी डोमिनियन में शामिल होने के बारे में फैसला करने के एकमात्र प्राधिकृत अधिकारी महाराजा हरि सिंह ही थे। और उन्होंने जम्मू और कश्मीर को भारत में शामिल करने का फैसला किया।

अन्य राज्यों की सामान ही था महाराजा द्वारा हस्ताक्षारित विलय पत्र

"हालांकि महाराजा द्वारा भारत में जम्मू और कश्मीर का विलय १४ अगस्त १९४७ के बाद किया गया, लेकिन फिर भी यह भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के प्रावधानों के तहत था", वैधिक था, काफी विचार के बाद किया गया था और इच्छापूर्वक किया गया था। विलय के लिए महाराज हरि सिंह द्वारा हस्ताक्षरित किया गया लेखपत्र वही था जो लार्ड माउंटबेटन ने ब्रिटिश भारत के बाहर के उन तकरीबन ५५० देशी रियासतों के लिए बनाया था (१४ अगस्त १९४७ से पहले) जिनके भारतीय डोमिनियन में शामिल होने की काफी अधिक संभावना थी।

डोमिनियन सरकार द्वारा शासित किए जाने वाले जिन तीन विषयों का उल्लेख था, वे वही थे जो ब्रिटिश परम सत्ता के अधीन थे चूंकि भारतीय लोकतांत्रिक गणराज्य के अधीन भावी संवैधानिक संबंध अभी भी तय होना बाकी था और अगर विलय अन्य फैसलों का क्रियान्वयन डोमिनियन के संविधान के निर्माण के बाद के लिए छोड़ दिया जाता तो इस बात का डर था कि स्वतंत्रता विभाजन ब्रिटिशों की वापसी की प्रक्रिया और अधिक लंबी हो जाती।

यहां तक लॉर्ड माउंटबेटन ने ऑन रिकॉर्ड इस तरह का बयान दिया। लार्ड माउंटबेटन ने २५ जुलाई १९४७ को चैंबर ऑफ प्रिंसेज के, एक विशिष्ट संपूर्ण अधिवेशन को संबोधित करते हुए कहा था", उड़ीसा प्रांत को बिहार से अलग करने में दो साल लग लग गए। सज्जनों, हमने तय किया कि ढाई महीने से कम में हमें ४० करोड़ निवासियों वाले इस देश के विभाजन को पूरा करना है।

इस तेजी की एक वजह थी। मुझे इस बात पर संदेह नहीं था कि चूंकि ब्रिटिश यहां पर प्रभुत्व के लिए किसी संतोषजनक नतीजे पर नहीं पहुंच पा रहे हैं, दलों के साथ मनोवैज्ञानिक तरीके से ही निष्कर्ष पाया जा सकता है। ऐसे में जब दो अलग-अलग सरकारें बन जायेंगी, तो परस्पर विश्वास के माहौल में वे संबंधित मुद्दों को सुलझाने में सक्षम होंगी... पहला कदम था ऐसी व्यवस्था की स्थापना जिससे भारत की दो भावी सरकारों का गठन संभव हो सके... डोमिनियन ऑफ इंडिया और डोमिनियन ऑफ पाकिस्तान... जो रियासतों के साथ सीधे संपर्क में होंगी। इसलिए मैंने भावी सरकारों के भीतर दो राज्य विभाग बनाने की योजना का विचार प्रकट किया... लेकिन जब मैं यह कहता हूं कि वे (रियासतें) किसी भी डोमिनियन के साथ जुड़ने के लिए स्वतंत्र हैं,

तो यह ध्यान देना जरूरी है कि कुछ ऐसी भौगोलिक बाध्यताएं हैं जिनसे पार नहीं पाया जा सकता। ५६३ रियासतों में से अधिकांश भौगोलिक रूप से भारतीय डोमिनियन के साथ जुड़ी हैं। इसका मतलब यह है कि पाकिस्तान के मुकाबले भारतीय डोमिनियन के सामने अधिक समस्याएं प्रस्तुत होने वाली हैं।

जहां तक पाकिस्तान का सवाल है, महत्वपूर्ण रियासतों की संख्या अधिक नहीं है और पाकिस्तान के भावी गवर्नर जनरल मिस्टर जिन्ना हर रियासत के मामले पर अलग और एक-एक करके समझौता-वार्ता करने के लिए तैयार हैं। लेकिन भारत के मामले में, जहां ऐसे रियासतों की संख्या काफी अधिक है, अलग-अलग रियासतों से इस तरह समझौते की बातचीत का सवाल ही नहीं उठता... इस बारे में मैंने जो पहला कदम उठाया, वह यह कि मैंने सलाह दी कि ब्रिटिश संसद के विधेयक.... भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम में... एक शर्त जोड़ी जानी चाहिए जिससे कुछ समझौते तब तक जारी रहेंगे जब तक कोई एक पक्ष उसे तोड़ने की घोषणा न कर दे। यह केवल यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया कि इस बाकी बचे वक्त (ढाई महीने से भी कम) में कुछ स्थिरता बनी रहे, क्योंकि हर राज्य के प्रतिनिधि के साथ अलग से समझौता किया जाना संभव नहीं है...इससे जरूर कुछ राहत हासिल होगी।

मेरे हिसाब से यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अधिकांश शासक और दीवान इस बात से चिंतित हैं कि जब परम सत्ता की समाप्ति हो जाएगी तो क्या होगा.. विलय के लेखपत्र का मसौदा, जो मैंने विचार (और प्रकाशन) के लिए रियासतों के प्रतिनिधियों को वितरित करवाया है, यह कहता है कि रियासतें का किसी उपयुक्त डोमिनियन के साथ विलय केवल तीन विषयों के लिए होगा, वह भी बिना किसी वित्तीय उत्तरदायित्व के"। बहुत सारे लोगों ने आम आदमी को या बाहरी दुनिया को यह तर्क देते हुए भ्रमित करने की कोशिश की है कि जम्मू और कश्मीर ने खास तौर पर केवल तीन विषयों के लिए अपना विलय किया था, जो कि एक गलत प्रस्तुतिकरण है।

विलय पत्र के साथ महाराजा का पत्र

२६ अक्टूबर १९४७ को भारत सरकार (भारतीय डोमिनियन के गवर्नर जनरल) को विलय की स्वीकृति प्रस्ताव भेजते समय महाराजा हरि सिंह ने साझे मसौदे की विषय वस्तु में कोई बदलाव नहीं किया सिवाय हस्ताक्षर की तिथि के जिसे अगस्त से बदलकर २६ अक्टूबर कर दिया गया। विलय में हुई देरी के सामाजिक- राजनीतिक कारणों का मैं संक्षेप में पिछले अध्यायों में उल्लेख कर चुका हूं।

महाराजा हरि सिंह ने २६ अक्टूबर १९४७ को विलय के लेखपत्र के साथ भारत सरकार को एक पत्र भी भेजा। गवर्नर जनरल ऑफ इंडिया लार्ड माउंटबेटन को संबोधित २६ अक्टूबर १९४७ को लिखे पत्र में महाराज हरि सिंह ने उन कारणों की व्याख्या करने की कोशिश की जिनकी वजह से वह १४ अगस्त १९४७ तक किसी भी डोमिनियन के साथ विलय के लेखपत्र पर हस्ताक्षर नहीं कर सके। महाराजा ने देर से किए गए विलय की कुछ दशाओं और कुछ विचारों की व्याख्या की है।

२६ अक्टूबर १९४७ के पत्र में महाराजा हरि सिंह ने १) कहीं भी यह नहीं कहा कि लोग उन्हें भारत के साथ विलय की अनुमति नहीं दे रहे हैं, २) पाकिस्तान पर आरोप लगाया कि वह राज्य में शांति भंग कर रहा है, ३) पाकिस्तान ने आपूर्ति के रास्तों को बाधित कर रखा था और जम्मू व कश्मीर तब तक भारत में सम्मिलित नहीं हुआ था, ४) अपने राज्य और अपने लोगों की सुरक्षा करने के लिए उनके पास लोगों, सामानों, ईंधन और हथियारों की कमी थी और भारत द्वारा जम्मू व कश्मीर को उपयोगी वस्तुओं तक की आपूर्ति नहीं की जा रही थी, यहां तक कि मूल्य लेने के अनुरोध पर भी नहीं, ५) उनके राज्य के लोग सामान्य तौर पर राज्य के खराब हालात से किसी भी तरह से संबद्ध नहीं थे।

“इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १९४७ और भारतीय शासन अधिनियम १९३५ के अनुसार जम्मू व कश्मीर के महाराज ही वह एकमात्र प्राधिकारी थे जो ब्रिटिश भारत के बाहर स्थित ब्रिटिश साम्राज्य के देशी रियासत के बारे में फैसला ले सकते थे। साथ ही दोनों में से किसी एक डोमिनियन के साथ सम्मिलित होने या किसी अन्य तरह संबंध रखने का फैसला लेते समय अपने आसपास बनी परिस्थितियों के बारे में टिप्पणी करने के लिए भी।”

महाराजा ने २६ अक्टूबर १६४७ को लिखे अपने पत्र में कहा, "महामहिम मैं आपको सूचित करना चाहता हूं कि मेरे राज्य में अत्यंत आपातकालीन स्थिति उत्पन्न हो गई है और मैं आपकी सरकार से त्वरित सहायता का अनुरोध करता हूं। जैसा कि आपको पता है, जम्मू और कश्मीर राज्य भारत या पाकिस्तान किसी भी डोमिनियन के साथ सम्मिलित नहीं हुआ है।

भौगोलिक रूप से मेरा राज्य दोनों से ही सटा हुआ है। इसके अलावा मेरे राज्य की सीमाएं यूएसएसआर और चीन के साथ भी लगी हुई हैं। भारतीय और पाकिस्तानी डोमिनियन अपने विदेशी मामलों पर फैसले करते समय इस बात की उपेक्षा नहीं कर सकते। महाराजा ने आगे कहा, "मैं इस बारे में फैसला करने के लिए वक्त लेना चाहता था कि मेरे राज्य को किसके साथ सम्मिलित होना चाहिए या क्या यह दोनों ही डोमिनियन के हित में नहीं होगा कि हम स्वतंत्र राज्य के तौर पर रहें और दोनों ही के साथ मैत्रीपूर्ण और हार्दिक संबंध बने रहें...पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के सुदूर क्षेत्रों से कबीलाई लोगों की भारी घुसपैठ हो रही है, ये नियमित तौर पर मोटर ट्रकों में भर कर आ रहे हैं, ये मानेशरा-मुजफ्फराबाद मार्ग के रास्ते आ रहे हैं और इनके पास अत्याधुनिक हथियार हैं, यह पाकिस्तान सरकार और पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत की प्रांतीय सरकार की जानकारी के बिना संभव नहीं हो सकता।

मेरी सरकार द्वारा लगातार अपील किए जाने के बावजूद इन छापामारों पर नियंत्रण करने या मेरे राज्य में आने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया जा रहा है.... पाकिस्तान रेडियो ने तो यह प्रसारित भी किया है कि कश्मीर में एक अस्थायी सरकार का गठन किया गया है।" "अपने लोगों के बारे में महाराजा ने कहा, मेरे राज्य के लोगों- मुस्लिम और गैर-मुस्लिम दोनों ने- मोटे तौर पर कोई हिस्सा नहीं लिया है.... "।

"मेरे राज्य की मौजूदा स्थिति और भारी आपत्ति की परिस्थिति को देखते हुए मेरे पास भारतीय डोमिनियन से मदद मांगने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है... स्वाभाविक है कि मेरे द्वारा मांगी गई मदद पर वह भारतीय डोमिनियन में मेरे राज्य के शामिल हुए बिना अपनी सहायता नहीं भेज सकते। इसके अनुरूप मैंने ऐसा करने का फैसला किया है और मैं इसके साथ अपने राज्य के विलय का लेखपत्र आपकी सरकार की स्वीकृति के लिए भेज रहा हूं।"... "मैं महामहिम की सरकार को सूचित करता हूं कि मेरी मंशा तुरंत एक अंतरिम सरकार का गठन करने की है। और इस आपातकालीन स्थिति में मैं शेख अब्दुल्ला को कहूंगा कि वह मेरे प्रधान मंत्री के साथ मिल कर इस जिम्मेदारी को

संभालें"। "निश्चित तौर पर कुछ अलिखित सामाजिक, राजनीतिक और संवाद से जुड़े कारण भी थे जिनके बारे में उल्लेख करना महाराजा ने जरूरी नहीं समझा होगा क्योंकि उस समय निजी स्तर पर संबंध उतने बेहतर नहीं चल रहे थे"। इसी तरह विलय के लेखपत्र के कुछ प्रासंगिक हिस्से हैं- "भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १९४७ के अनुसार १५ अगस्त १९४७ से भारत नामक एक स्वतंत्र डोमिनियन की स्थापना की जायेगी और भारतीय शासन अधिनियम १९३५ गवर्नर जनरल के द्वारा किए गए जोड़-घटाव, अनुकूलन और संशोधन के सहित डोमिनियन ऑफ इंडिया के लिए लागू होगा। साथ ही भारतीय शासन अधिनियम १९३५, जैसा गवर्नर द्वारा अपनाया गया है, यह स्पष्ट करता है कि कोई भारतीय रियासत अपने शासक द्वारा विलय के लेखपत्र पर हस्ताक्षर किए जाने के बाद भारतीय डोमिनियन में शामिल हो सकती है। ऐसे में, मैं, श्रीमान इंद्र महेंद्र राजराजेश्वर महाराजाधिराज श्री हरि सिंह जी, जम्मू एवं कश्मीर नरेश तथा तिब्बत आदि देशाधिपति, जम्मू और कश्मीर राज्य का शासक, अपने राज्य पर अपनी संप्रभुता का प्रयोग करते हुए विलय के इस लेखपत्र को क्रियान्वित करता हूं और .... ३... मैं सूची में उल्लिखित मुद्दों को ऐसे मुद्दे स्वीकार करता हूं जिन पर डोमिनियन की विधान सभा इस राज्य के लिए कानून बना सकती है....५..विलय के मेरे इस लेखपत्र की शर्तों को कोई कानून बना कर संशोधित करके या भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १९४७ द्वारा तब तक परिवर्तित नहीं किया जाना चाहिए जब तक ऐसा संशोधन मुझे स्वीकार्य न हो, जो लेखपत्र इस लेखपत्र का पूरक होगा..८...मैं एतदद्वारा यह घोषणा करता हूं कि मैं इस राज्य की तरफ से इस लेखपत्र को क्रियान्वित करता हूं और इस उद्देश्य के लिए इस लेखपत्र में मेरे या राज्य के शासक के बारे में कोई भी संदर्भ आए तो इसका अर्थ लगाते समय मेरे सहित मेरे वारिसों और उत्तराधिकारियों को शामिल किया जाये".... और लार्ड माउंटबेटन, भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल, ने इस स्वीकृति पर २७ अक्टूबर १९४७ को हस्ताक्षर किया... "मैं एतदद्वारा २७ अक्टूबर उन्नीस सौ सैंतालिस को विलय के इस लेखपत्र को स्वीकार करता हूं"। और इस तरह भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १९४७ के प्रावधानों के तहत यह प्रक्रिया पूरी हुई।

महाराज द्वारा हस्ताक्षरित विलय के लेखपत्र के साथ एक प्रभावोत्पादक पत्र था जिसमें परिस्थितियों और कारणों का वर्णन था। माउंटबेटन ने भी २७ अक्टूबर के एक पत्र द्वारा महाराजा हरि सिंह के पत्र को अभिस्वीकृति दी थी, लेकिन माउंटबेटन के पत्र की विषयवस्तु संकल्पनात्मक लिहाज से उतनी प्रभावी नहीं थी जितनी कि महाराजा की। इसकी चर्चा अगले अध्याय में की जाएगी।

तर्कसंगत नहीं थी माउंटबेटन के पत्र की विषयवस्तु

२६ अक्टूबर १९४७ के अपने पत्र में जम्मू और कश्मीर के महाराजा हरि सिंह ने कहीं भी विलय से संबंधित विवाद का उल्लेख नहीं किया था और न ही उन्होंने इस बात की चर्चा की थी कि उनकी जनता भारत के साथ विलय के विरुद्ध जनांदोलन या पाकिस्तान के साथ विलय की मांग या स्वतंत्रता की मांग कर रही है। उन्होंने भारतीय डोमिनियन के साथ मजबूत विलय का प्रस्ताव किया था, वह भी बिना शर्त के। लेकिन उनके (हरि सिंह के) तथ्यों और परिस्थितियों से संबंधित पत्र की अभिस्वीकृति देते समय गवर्नर जनरल माउंटबेटन ने जम्मू और कश्मीर के विलय को विवाद के मुद्दे के तौर पर संबोधित किया, जबकि महाराजा ने कहीं भी विवाद की चर्चा नहीं की थी। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम १९४७ के दायरे के अधीन कहीं भी पाकिस्तान को यह अधिकार नहीं था कि वह विलय के बारे में जम्मू और कश्मीर के महाराजा के साथ कोई विवाद उत्पन्न करे।

महाराजा हरि सिंह के २६ अक्टूबर के पत्र को अभिस्वीकृति देते हुए माउंटबेटन ने २७ अक्टूबर के अपने पत्र में कहा था, "महामहिम का २६ अक्टूबर १९४७ का पत्र मुझे वी पी मेनन के माध्यम से प्राप्त हुआ है। महामहिम आपके द्वारा वर्णित परिस्थितियों में, मेरी सरकार ने डोमिनियन ऑफ इंडिया में कश्मीर राज्य के विलय को स्वीकार करने का फैसला किया है। ऐसे किसी राज्य के मामले में जहां विलय के मुद्दे पर विवाद हो, उस नीति की सुसंगति में, विलय का प्रश्न उस राज्य की जनता की इच्छा के अनुरूप निर्णित हो, यह मेरी सरकार की इच्छा है। जैसे ही कश्मीर में कानून व व्यवस्था स्थापित होती है और इसकी धरती आक्रमणकारियों से मुक्त होती है, राज्य के विलय का प्रश्न यहां की जनता के परामर्श के जरिए सुलझाया जाएगा। महामहिम की सैनिक सहायता की अपील पर आज भारतीय सेना की टुकडियां कश्मीर भेजने के लिए कदम उठाया गया है ताकि आपकी सेना की मदद की जा सके जिससे आपके राज्य की सुरक्षा हो और आपकी जनता के जीवन, संपत्ति और सम्मान की रक्षा हो सके। मुझे और मेरी सरकार को यह जानकर काफी संतुष्टि है कि महामहिम ने अपने प्रधानमंत्री के साथ काम करने के लिए शेख अब्दुल्ला को अंतरिम सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया है।"

जबकि महाराजा हरि सिंह द्वारा अपने पत्र में विलय से संबंधित किसी विवाद का कोई संदर्भ नहीं मिलता। यह विलय ब्रिटिश संसद द्वारा पारित भारतीय स्वतंत्रता

अधिनियम १९४७ और भारतीय डोमिनियन के गवर्नर जनरल द्वारा अपनाए गए भारत शासन अधिनियम १९३५ के तहत काफी सुविचारित तरीके से किया गया था और एकमात्र प्राधिकृत अधिकारी द्वारा किया गया था। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम की विषयवस्तु को चुन कर किसी एक की पसंद से इस्तेमाल नहीं किया जा सकता, और अगर कोई भी जम्मू व कश्मीर के महाराजा के अधिकारों को कमतर कर आंकने की कोशिश करता है तो कोई ऐसा भी हो सकता है जो ब्रिटिश संसद द्वारा द्विराष्ट्र सिद्धांत के जरिए फिर से लिखी गई भारत की नियति को भी न स्वीकार करे और यहां तक कि पाकिस्तान के अस्तित्व पर भी सवाल खड़े कर दे।

निश्चित तौर पर लार्ड माउंटबेटन के पत्र में कुछ महत्वपूर्ण सवालों के जवाब अधूरे रह गए थे। यहां तक कि जवाहर लाल नेहरू की तत्कालीन मंत्रिपरिषद को भी इसके लिए सवालों के कटघरे में खड़ा किया जा सकता है, मेरा मानना है कि वल्लभ भाई पटेल को भी। चूंकि उस समय तक न तो महाराजा और न ही भारत सरकार संयुक्त राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद तक पहुंचे थे। भारत ने एक जनवरी १९४८ को पाकिस्तान के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में एक शिकायत दर्ज कराई थी। और बड़े आश्चर्य की बात है कि भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंटबेटन ने हरि सिंह द्वारा हस्ताक्षरित २६ अक्टूबर १९४७ के विलय के लेखपत्र को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया और अपनी सरकार की तरफ से लॉर्ड माउंटबेटन ने लोगों का संदर्भ लेते हुए विलय के आखिरी समझौते की दशाओं को अलग से तय किया, वह भी इस बात के बावजूद कि २७ अक्टूबर १९४७ को विलय के लेखपत्र की बिना शर्त स्वीकृति पर हस्ताक्षर किए गए थे। और उन्होंने जम्मू और कश्मीर राज्य को एक ऐसे राज्य के तौर पर वर्गीकृत किया जहां विलय एक विवाद का मुद्दा था, जबकि महाराजा द्वारा लिखे गए पत्र में उनके राज्य की जनता की ओर से विरोध या विवाद का कोई संदर्भ ही नहीं था। जम्मू और कश्मीर के महाराजा, जो अपनी रियासत की जरूरतों और परिस्थितियों का आकलन करने वाले एकमात्र प्राधिकृत अधिकारी थे, ने कहीं भी इस तरह का संकेत नहीं दिया था कि भारत में होने वाले विलय के खिलाफ उनके लोगों की ओर से विरोध दर्ज कराया जा रहा है और इसकी वजह से इस रियासत के बारे में निर्णय के फैसले के अधिकार को निरस्त किया जाए। महाराजा हरि सिंह बहादुर ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा था कि जहां तक नई गठित डोमिनियन ऑफ पाकिस्तान से लगी सीमा के उस पार से दिखाई जा रही आक्रामकता का सवाल है, उनके राज्य जम्मू और कश्मीर के लोग मोटे तौर पर उनके राज्य के खराब हालात के जिम्मेदार नहीं हैं।

जबकि माउंटबेटन का यह उल्लिखित पत्र तकनीकी तौर पर विलय के लेखपत्र का हिस्सा नहीं था और न ही ऐसा कोई दस्तावेज है जहां सशर्त विलय की स्वीकृति की महाराजा हरि सिंह की ओर से पुष्टि की गई है। ऐसे में माउंटबेटन द्वारा उल्लिखित दशा सही नहीं थी।

जम्मू व कश्मीर और भारत की जनता के लिए यह काफी दुर्भाग्यपूर्ण है कि सत्ता में बैठे लोगों ने कभी भी माउंटबेटन के पत्र की विषयवस्तु को स्पष्ट करने की कोशिश ही नहीं की ताकि विलय के खिलाफ लोगों द्वारा उठाए गए सवालों का जवाब मिल जाएगा। ऐसे में, चूंकि सालों-साल भारत सरकार ने जम्मू और कश्मीर के मामलों को लापरवाही से निपटाने की कोशिश की है, विरोधी दल अपना नजरिया न केवल आम आदमी के सामने बल्कि सरकारी तंत्रों से बाहर बैठे लोगों तक ले जाने में कामयाब रहे हैं।

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंटबेटन के २७ अक्टूबर १९४७ के पत्र ने सालों-साल अलगाववादी संगठनों उनके आकाओं पाकिस्तान व अन्य को तर्क की एक जमीन मुहैया कराई है जिन्होंने भारत के साथ १९४७ में जम्मू और कश्मीर रियासत के विलय की पूर्णता के खिलाफ आवाज उठाई है। भारत विरोधी तत्वों ने इस पत्र को इस्तेमाल करते हुए इस विलय को सशर्त और यहां तक कि अस्थायी बताया है। इसके अलावा कुछ तो यह भी कहते हैं कि भारत सरकार ने पूरी तरह से विलय को स्वीकार नहीं किया था।

तकनीकी नजरिए से देखा जाए तो किसी रियासत के विलय का क्रियान्वयन भारतीय शासन अधिनियम १९३५ और भारत स्वतंत्रता अधिनियम १९४७ के संदर्भ में होना चाहिए था। माउंटबेटन उस समय भारत के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के करीबी पारिवारिक सहयोगी भी थे। माउंटबेटन खुद से इस तरह की शर्त नहीं रख सकते थे। महाराजा हरि सिंह ने अपने प्रिय लोगों, सलाहकारों व विश्वासपात्रों से वैचारिक आदान-प्रदान और लंबी बातचीत के बाद डोमिनियन ऑफ इंडिया के साथ विलय का फैसला लिया था। भारत सरकार के पास इस विलय को स्वीकार न करने या इसे शर्त के साथ स्वीकार करने का कोई तार्किक कारण या कोई खास व सामाजिक अधिकार या कानून का कोई प्रावधान या वैध कारण नहीं था।

जो लोग विलय के लेखपत्र के निषेध की वकालत करते हैं और किसी स्वतंत्र एजेंसी के पर्यवेक्षण के तहत जम्मू और कश्मीर के लोगों की इच्छा का पता लगाने की मांग करते

हैं, इस पत्र में माउंटबेटन द्वारा रखी गई शर्त का हवाला देते हैं। वे तर्क देते हैं कि यह पत्र उस विलय के लेखपत्र का हिस्सा बन गया था। इस मामले में इस बात को भी ध्यान में रखे जाने की जरूरत है कि महाराजा द्वारा हस्ताक्षरित विलय के लेखपत्र में दी गई शर्तों और दशाओं के हिसाब से उन शर्तों में किसी भी तरह के संशोधन के लिए महाराजा की सहमति जरूरी थी। अतः इस मांग को भी खारिज किया जा सकता है क्योंकि एक सशर्त विलय के लिए महाराजा हरि सिंह की सहमति जरूरी थी, और चूंकि यह सहमति नहीं ली गई, इसलिए इस पत्र का कोई महत्व नहीं था। अतः तकनीकी तौर पर भारतीय डोमिनियन के साथ जम्मू और कश्मीर का विलय निश्चित तौर पर हुआ और जो लोग जम्मू और कश्मीर के राजनीतिक व राष्ट्रीय हैसियत के संदर्भ में स्वनिर्णय के अधिकार की मांग कर रहे हैं, उन्हें पहले भारतीय संघ से जम्मू और कश्मीर को अलग करने की मांग करनी होगी और इसके बाद हो सकता है कि ब्रिटिश संसद के १९४७ के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम को वापस पलटने की मांग करनी पड़े। क्योंकि इसी अधिनियम ने देशी रियासतों के राजाओं को इस बात का पूर्ण अधिकार दिया था कि वे या तो स्वतंत्र भारतीय डोमिनियन के साथ जुड़ जाएं या फिर पाकिस्तान के नए डोमिनियन के साथ।

आक्रमणकारियों से जम्मू और कश्मीर की जमीन मुक्त कराने के लिए सयुक्त राष्ट्र ने कुछ नहीं किया

अन्य कारणों के साथ ही साथ हो सकता है कि ब्रिटिश शिराओं में अभी भी भारत के प्रति विद्वेष रहा हो और माउंटबेटन ने जिस तरीके से विलय के लेखपत्र को स्वीकार किया, उससे ब्रिटिशों की सोच समझ में आती है। पाकिस्तान के खिलाफ भारत की शिकायत की सुनवाई के समय जिस तरीके से यूनाइटेड किंगडम और अमेरिका ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में पाकिस्तान का पक्ष लिया, उससे भारत से ब्रिटिश वापसी के कुछ ही समय बाद चोटिल ब्रिटिश मानसिकता ही दिखती है।

आक्रमणकारी पाकिस्तान को शिकायतकर्ता भारत के साथ बराबरी के दर्जे पर रखा गया। ५ फरवरी १९४८ को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में एक बहस के दौरान शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने भी कहा था, "आक्रमण मुद्दा है, न कि विलय।" हालांकि फिर भी सुरक्षा परिषद ने कुछ शर्तों के अधीन जम्मू और कश्मीर में एक जनमत संग्रह का प्रस्ताव पारित कर दिया। सुरक्षा परिषद का पक्षपाती रवैया इस बात से काफी अच्छी तरह से उभर कर सामने आ गया जब संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद, जब २१ फरवरी १९५१ को सर ओवेन डिक्सन की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए मिली, तो उसने इसके बदले यूके और यूएसए द्वारा संयुक्त तौर पर प्रायोजित एक प्रस्ताव द्वारा यह फैसला किया कि सर ओवेन डिक्सन के सिलसिले को आगे बढ़ाते हुए एक और संयुक्त राष्ट्र प्रतिनिधि भारत व पाकिस्तान भेजा जाए, "जो सर डिक्सन द्वारा विसैन्यीकरण के बारे में दिए गए प्रस्तावों के आधार पर जम्मू और कश्मीर में इस काम को लागू कराए, इसमें यह प्रतिनिधि वे संशोधन कर सकता था जो उसे उचित लगें। साथ ही वह जम्मू और कश्मीर में जनमत संग्रह कराने की विस्तृत योजना भारत व पाकिस्तान की सरकारों के सामने पेश करे"। भारत के विरोध के बावजूद इस प्रस्ताव को ३० मार्च १९५१ को बहुमत से पारित कर दिया गया। किसी ने इसके खिलाफ मत नहीं दिया, लेकिन यूएसएसआर और यूगोस्लाविया इस मतदान से बाहर रहे।

यहां तक कि संयुक्त राष्ट्र द्वारा २७ अक्टूबर के लॉर्ड माउंटबेटन के पत्र को इसकी विषय वस्तु को संज्ञान में लाए बिना एकतरफा तौर पर भारत के खिलाफ इस्तेमाल किया गया, जिसमें कहा गया था, "यह मेरी सरकार की इच्छा है कि जैसे ही कश्मीर में कानून व व्यवस्था स्थापित होती है और इसकी धरती आक्रमणकारियों से मुक्त होती

है, राज्य के विलय का प्रश्न यहां की जनता के परामर्श के जरिए सुलझाया जाएगा“। आक्रमणकारियों से मुक्त करा कर जम्मू और कश्मीर की जमीन वापस लेने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने कुछ नहीं किया.... पाकिस्तानी सैन्य बल भी भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर (जो २६ अक्टूबर १९४७ को वैधानिक तौर पर भारत में शामिल हो गया था) पर मई १९४८ में आक्रमणकारी दल के हिस्से बन गए थे।

महाराजा को शेख अब्दुल्ला के सामने असहाय बना दिया

२६ अक्टूबर १९४७ के बाद जो घटनाएं हुईं उनमें कई काफी अप्रिय थीं, खास तौर पर जिस तरीके से जम्मू और कश्मीर के महाराजा, जो स्थानीय संवैधानिक प्रमुख थे, के साथ व्यवहार किया गया।

शेख मुहम्मद अब्दुल्ला, जिन्हें ३० अक्टूबर १९४७ को महाराजा हरि सिंह द्वारा १९४७ की आदेश संख्या १७६-एच के तहत आपातकालीन परिस्थितियों से निबटने की शक्तियों के साथ प्रशासन का मुखिया बनाया गया था और उनके दीवान के साथ काम करने के लिए कहा गया था, को भारत सरकार ने अधिक तवज्जो दिया। (मुख्य सचिवालय (सामान्य विभाग) आपातकालीन प्रशासन : हमें यह घोषणा करते हुए प्रसन्नता हो रही है कि अंतरिम सरकार के गठन की जो प्रक्रिया लंबित पड़ी हुई थी उसके संदर्भ में, जैसा कि तय हुआ था और उत्पन्न आपातकालीन परिस्थिति में, मैं शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को प्रशासन के प्रमुख का पद देते हुए आपातकाल से लड़ने की शक्ति देता हूं। शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को श्रीनगर उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या अन्य किसी न्यायाधीश द्वारा शपथ दिलाई जाएगी। हरि सिंह महाराजाधिराज, द्वारा आदेश संख्या १७६- एच (१९४७), ३० अक्टूबर १९४७) जम्मू और कश्मीर के मामले भारत के प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू के हाथ में थे।

पाकिस्तान के खिलाफ शिकायत का मसौदा बनाये जाते समय और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के समक्ष एक जनवरी १९४८ को शिकायत दर्ज कराते समय महाराजा हरि सिंह से परामर्श नहीं किया गया था। तत्कालीन उप प्रधानमंत्री वल्लभ भाई पटेल को संबोधित ३१ जनवरी १९४८ के अपने पत्र में हरि सिंह ने इस संदर्भ में अपनी चिंता व्यक्त की थी। महाराजा हरि सिंह और सरदार पटेल व जवाहर लाल नेहरू के बीच पत्र व्यवहार के रिकॉर्ड देखने पर पता चलता है कि हरि सिंह द्वारा विलय के लेखपत्र पर हस्ताक्षर किए जाने के बाद दिल्ली ने महाराजा को तकरीबन अप्रासंगिक सा बना दिया था और उनके बदले शेख मुहम्मद अब्दुल्ला, जो ५ मार्च १९४८ तक आंतरिक प्रशासन के लिए आपातकालीन शासन के प्रमुख मात्र थे, को अवांछित तवज्जो दिया गया। ऐसा लगता है कि नेहरू को अभी भी इस बात का भय था कि शेख को महाराजा द्वारा बाद में हटाया जा सकता है और नेहरू के लिए शेख का हित अधिक महत्वपूर्ण था। तकलीफ पैदा करने लोग अभी भी कश्मीर में ही बने हुए थे, जिनकी वजह से भ्रम बढ़ रहे थे और १९४६ में कश्मीर छोड़ो की घोषणा के बाद से ही महत्वाकांक्षाएं

बलवती हो रही थीं क्योंकि शेख अब्दुल्ला ने कांग्रेस और ऑल इंडिया पीपल्स कांग्रेस के नेतृत्व की उपेक्षा करने की घोषणा कर दी थी। शेख के भी दिमाग में इस बात का डर (शायद थोड़ा सा ही सही) था कि जनतांत्रिक शक्ति जम्मू और कश्मीर के किसी अन्य नेता या राजनीतिक दल के हाथ में जा सकती है, चूंकि कश्मीर घाटी में मुस्लिम कांफ्रेंस शेख की नेशनल कांफ्रेंस के खिलाफ थी, जम्मू प्रांत में नेशनल कांफ्रेंस का कुछ खास जनाधार नहीं था और जम्मू, पुंछ, राजौरी और जम्मू व कश्मीर के अन्य गैर-कश्मीरी भाषी क्षेत्रों (यहां तक कि कश्मीर प्रांत) के मुस्लिम नेता सर्वसम्मति से शेख की नेशनल कांफ्रेंस के पक्ष में नहीं थे। ३० अक्टूबर १९४६ को राज्य कांग्रेस समिति के महासचिव ए एन वैद ने जम्मू से सरदार वल्लभ भाई पटेल (अखिल भारतीय कांग्रेस की संसदीय समिति के अध्यक्ष) को लिखा कि नेशनल कांफ्रेंस कांग्रेस प्रगतिशील हिंदुओं की एक संयुक्त बैठक हुई है और यह तय पाया गया कि जनवरी १९४७ के जम्मू प्रांत के राज्य विधानसभा के चुनाव कांग्रेस के टिकट पर लड़े जाएं चूंकि नेशनल कांफ्रेंस का जम्मू प्रांत में कम प्रभाव है और इसके बारे में ऐसी आशंकाएं हैं कि यह मुस्लिम कांफ्रेंस का परिवर्तित रूप है और इसने जम्मू में जमीनी स्तर पर काफी कम काम किया है। और ऐसे में कांग्रेस के टिकट पर एक संयुक्त घोषणापत्र पर चुनाव लड़े जाने की स्थिति में सात में चार हिंदू सीटें और दो में से एक मुस्लिम सीट कांग्रेस को मिल सकती है, अन्यथा सभी पर हार हासिल होगी।

दिल्ली की शह पर शेख ने महाराजा का मजाक बना दिया

जहां तक जम्मू और कश्मीर के स्थानीय मामलों से जुड़े फैसलों का सवाल है और जम्मू और कश्मीर के भारतीय क्षेत्र से घुसपैठियों को बाहर खदेड़ने का मामला है, २७ अक्टूबर १९४७ के बाद हरि सिंह को सामने नहीं रखा गया। एक जनवरी १९४९ को औपचारिक तौर पर भारत द्वारा युद्ध विराम की घोषणा की गई (पाकिस्तान के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र संघ में शिकायत दर्ज कराए जाने के एक साल के बाद)। सरदार वल्लभ भाई पटेल को संबोधित ३१ जनवरी १९४८ के अपने पत्र में हरि सिंह ने इस बात पर नाखुशी जाहिर की कि भारत में जम्मू और कश्मीर के विलय के दो महीने के भीतर ही भारत ने मंगला, अलीबेग, गुरद्वारा, और मीरपुर कस्बा, भिम्बर कस्बा, देवा और बटाला गांव, राजौरी कस्बा और छंब से मिला हुआ सारा क्षेत्र, नौशेरा, झांगर और कोटली क्षेत्र पाकिस्तान के हाथों गंवा दिए। ३१ जनवरी १९४८ के अपने पत्र में महाराजा हरि सिंह ने यहां तक प्रस्ताव किया कि वह खुद भारतीय सेनाओं की कमान का नेतृत्व करना चाहते हैं ताकि जम्मू और कश्मीर से घुसपैठियों पाकिस्तानी सैन्य बलों को खदेड़ा जा सके। महाराज ने स्पष्ट किया कि विलय का मुद्दा संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के दायरे के अंतर्गत नहीं था और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने भारत की शिकायत को अनावश्यक रूप से संदर्भ से अलग करके देखा है। लेकिन ऐसा लगता है कि भारत सरकार ने महाराजा की उपेक्षा कर दी।

साल १९४७ से पूर्व, महाराजा ने पहले भी जम्मू और कश्मीर के संवैधानिक अधिनियम १९९६ विक्रमी (१९९६ का चतुर्दश) १९३९ ईसवी के तहत एक संवैधानिक सरकार स्थापित की थी जिसमें एक मंत्रिपरिषद थी, एक विधान सभा थी जिसमें चुने हुए सदस्य थे और एक स्वतंत्र न्यायपालिका थी। जम्मू और कश्मीर व अन्य निर्भर क्षेत्रों के शासक महाराजा हरि सिंह ने ५ मार्च १९४८ को एक और उद्‌घोषणा की जिसमें उन्होंने एक पूर्ण लोकतांत्रिक संविधान की तात्कालिक स्थापना की अपनी इच्छा व्यक्त की जो वयस्क मताधिकार पर आधारित हो। साथ ही उनके राजवंश से एक आनुवंशिक शासक हो जो उस कार्यपालिका का संवैधानिक अध्यक्ष हो जो विधायिका के प्रति उत्तरदायी हो। महाराजा ने पहले ही, ३० अक्टूबर १९४७ को, स्थानीय लोकप्रिय नेता शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को आपातकालीन प्रशासन का मुखिया बनाया था। इसके बाद ५ मार्च १९४८ को उद्‌घोषणा की गई थी। [जम्मू और कश्मीर व अन्य निर्भर क्षेत्रों के शासक श्रीमान इंदर मोहिंदर राजराजेश्वर महाराजाधिराज श्री

हरि सिंह की ५ मार्च की उद्घोषणाः मेरे राजवंश की परंपराओं के अनुरूप, अपने राज्य में जल्द से जल्द एक पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लक्ष्य की प्राप्ति के उद्देश्य से मैंने राज्य के प्रशासन में अपने लोगों की सहभागिता बढ़ाने के अवसर समय-समय पर उपलब्ध कराए हैं। और इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए जम्मू और कश्मीर के संवैधानिक अधिनियम १९९६ विक्रमी (१९९६ का चतुर्दश) के तहत एक संवैधानिक सरकार स्थापित की है जिसमें एक मंत्रिपरिषद, निर्वाचित सदस्यों के बहुमत वाली विधान सभा और एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था है। इस संबंध में अब तक उठाए गए कदमों और अपनी जनता की एक पूर्ण लोकतांत्रिक संविधान, जो वयस्क मताधिकार पर आधारित हो और जिसमें राजवंश से एक आनुवंशिक शासक उस कार्यपालिका का संवैधानिक अध्यक्ष हो जो विधायिका के प्रति उत्तरदायी हो, की तात्कालिक स्थापना की वैधानिक इच्छा को अत्यंत फख्र और संतुष्टि के साथ ग्रहण किया है। मैंने पहले से ही अपने लोगों के लोकप्रिय नेता शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को आपातकालीन प्रशासन का मुखिया बना दिया है। अब मेरी यह इच्छा है कि आपातकालीन प्रशासन का स्थान एक लोकप्रिय अंतरिम सरकार ले ले और इसकी शक्तियां, कर्तव्य और कार्य इसे प्राप्त हो जाएं, जो एक पूर्ण लोकतांत्रिक संविधान की स्थापना के लिए लंबित है।

तदनुरूप मैं यह घोषणा करता हूं कि,

१. मेरे मंत्रिपरिषद में प्रधानमंत्री और प्रधानमंत्री की सलाह पर नियुक्त किए गए अन्य मंत्री होंगे। मैंने राजसी अधिकार पत्र (रॉयल वारंट) के जरिए शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को आज की तिथि से प्रधानमंत्री नियुक्त किया है।

२. प्रधानमंत्री और अन्य मंत्री एक मंत्रिमंडल के तौर पर कार्य करेंगे और संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर कार्य करेंगे। मेरे द्वारा नियुक्त एक दीवान भी इस मंत्रिमंडल का सदस्य होगा।

३. इस अवसर पर मैं एक बार फिर औपचारिक आश्वासन देता हूं कि मेरे राज्य के सभी वर्गों के लोगों को उनकी योग्यता के आधार पर, पंथ या समुदाय पर ध्यान दिए बिना सिविल और मिलिटरी- दोनों ही सेवाओं में मौके मिलेंगे।

४. जैसे ही सामान्य अवस्था बहाल कर ली जाती है, मेरी मंत्रिपरिषद वयस्क मताधिकार पर आधारित नेशनल एसेंबली के गठन के लिए उचित कदम उठाएगी। इसमें इस सिद्धांत का ध्यान रखा जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधियों की संख्या उस क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में हो (जहां तक व्यावहारिक हो सके)।

५. नेशनल एसेंबली द्वारा बनाए गए संविधान में अल्पसंख्यकों को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया जाएगा और इसमें अंतःकरण की स्वतंत्रता, भाषण की स्वतंत्रता और

सभा करने की स्वतंत्रता की गारंटी देने वाले उपयुक्त प्रावधान होंगे।
६. जैसे ही नए संविधान के निर्माण का काम पूरा हो जाता है, नेशनल एसेंबली अपनी मंत्रिपरिषद के जरिए इसे मेरी स्वीकृति के लिए भेजेगी।
७. संक्षेप में, मैं अपनी यह उम्मीद एक बार फिर से व्यक्त करना चाहता हूं कि एक लोकप्रिय अंतरिम सरकार के गठन और निकट भविष्य में एक पूर्ण लोकतांत्रिक संविधान के क्रियान्वयन से मेरी प्रिय जनता की संतुष्टि, प्रसन्नता और नैतिक व भौतिक विकास सुनिश्चित होगा।

महाराजा ने आपातकालीन प्रशासन के स्थान पर एक लोकप्रिय अंतरिम सरकार को पदस्थापित कर दिया जिसके पास अंतरिम शक्तियां, कर्तव्य और कार्य थे, जो एक पूर्ण लोकतांत्रिक संविधान की स्थापना के लिए लंबित थे। महाराजा ने स्थानीय संवैधानिक प्रमुख की हैसियत से राजसी अधिकार पत्र (रॉयल वारंट) के जरिए ५ मार्च १६४८ से शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को अंतरिम सरकार का प्रधानमंत्री नियुक्त किया, जहां प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों को एक मंत्रिमंडल के तौर पर और संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर कार्य करना था। राजा द्वारा नियुक्त दीवान भी इस मंत्रिमंडल का सदस्य था। उद्घोषणा में इस बात का भी आदेश था कि १) जैसे ही सामान्य अवस्था बहाल कर ली जाती है, महाराजा की मंत्रिपरिषद वयस्क मताधिकार पर आधारित नेशनल एसेंबली के गठन के लिए उचित कदम उठाएगी। इसमें इस सिद्धांत का ध्यान रखा जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधियों की संख्या उस क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में हो (जहां तक व्यावहारिक हो)। २) नेशनल एसेंबली द्वारा बनाए गए संविधान में अल्पसंख्यकों को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया जाएगा और इसमें अंतःकरण, भाषण और सभा करने की स्वतंत्रता की गारंटी देने वाले उपयुक्त प्रावधान होंगे। ३) जैसे ही नए संविधान के निर्माण का काम पूरा हो जाता है, नेशनल एसेंबली अपनी मंत्रिपरिषद के जरिए इसे महाराजा की स्वीकृति के लिए भेजेगी। लेकिन जिस तरीके से मामले को संचालित करने की कोशिश की गई, उससे भ्रम की स्थिति बनी रही और जिस तरह के कार्य किए गए या जिस तरह के कार्यों का आदेश किया गया, उनसे कोई व्यक्ति यह समझने को बाध्य हो सकता है कि महाराजा को अलग-थलग रखा गया। ऐसा लगता है कि जम्मू और कश्मीर से संबंधित जो नीतिगत कार्रवाइयां की गईं, उनमें भारत सरकार ने महाराजा से परामर्श तक नहीं किया, उन मुद्दों पर भी नहीं, जिन पर सलाह करना विलय के लेखपत्र की शर्तों के अनुसार उपयुक्त था। अंतरिम सरकार द्वारा नेशनल एसेंबली के चुनावों की तत्काल व्यवस्था नहीं कराई गई।

२६ अप्रैल और १ मई १६४६ को हुई बैठक के संदर्भ में सरदार पटेल को महाराजा हरि सिंह द्वारा ६ मई १६४६ को जो पत्र लिखा गया, उसके अनुसार... "राज्य में जो संवैधानिक स्थिति मुझे प्राप्त है उस बारे में प्रधानमंत्री या आपकी ओर से जो सलाह मिलती है, उसे मुझे मानने को बाध्य होना पड़ता है, जो कई बार मेरे खुद की निर्णय शक्ति और अपनी चेतना के खिलाफ होती है, जो कई बार उन व्यवस्थाओं के विरुद्ध होती है जिन पर हम कुछ महीने पहले सहमत हुए थे। अब मेरी तरफ से अपनी भावनाएं छिपाना क्या उचित होगा कि समय-समय पर शेख अब्दुल्ला को अपनी सोच के हिसाब से उन लिखित और शपथ लिए शब्दों से अलग तरीके से काम करने का मौका दे दिया जाता है? कि उन्हें लगातार उस निष्ठा के उल्लंघन करते रहने की अनुमति दे दी जाती है जो उन्होंने जेल से छूटने से पहले मेरे प्रति घोषित की थी, कि उन्हें लगातार उस राजभक्ति की शपथ के खिलाफ काम करने की अनुमति दी जाती है जो वह राज्य में और राज्य के बाहर मेरी निंदा और मिथ्या दोषारोपण के अभियान के जरिए कर रहे हैं? मुझे उन सभी स्थानों से हटाया जाना चाहिए जो राज्य मंत्रालय की सलाह के अनुसार मेरे पास हैं..."।

किसी भी तरह से अब मेरे पास कोई चारा नहीं है सिवाय इस बात के कि मैं आधिकारिक आदेशों दस्तावेजों के हिसाब से चलूं। जब तक नवंबर १६५६ में नए संविधान को अंगीकृत नहीं कर लिया जाता और २६ जनवरी १६५७ से उसे लागू नहीं कर दिया जाता। अन्यथा विभिन्न वैचारिक समूहों की ओर से न खत्म होने वाली बहसें शुरू कर दी जायेंगी और लोगों को और भ्रम की ओर धकेल दिया जायेगा। मामलों का विश्लेषण यह मानते हुए किया जायेगा कि रीजेंट के साथ सरकार की गतिविधियों को महाराजा की अनुमति प्राप्त है।

जून १९४९ में महाराजा ने अस्थायी तौर पर जम्मू—कश्मीर छोड़ा

तात्कालिक हालात को देखते हुए और अपने सलाहकारों (शायद दिल्ली में मौजूद) के परामर्श पर महाराजा हरि सिंह ने जून १६४६ (जम्मू और कश्मीर राजभवन के वेबसाइट के अनुसार २० जून) में एक और उद्घोषणा जारी की। इस उद्घोषणा के अनुसार : "स्वास्थ्य संबंधी कारणों से मैंने राज्य को अस्थायी तौर पर छोड़ने का फैसला किया है और इस अवधि के दौरान राज्य की सरकार से संबंधित सभी शक्तियों और कार्यों को युवराज श्री कर्ण सिंह जी बहादुर को सौंपता हूं। अब, ऐसे में मैं यह आदेश देता हूं और घोषित करता हूं कि राज्य और इसकी सरकार के साथ मेरे द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली सभी विधिक, कार्यपालिक या न्यायिक शक्तियां और अधिकार, खास तौर पर मेरे अधिकार और कानून बनाने के विशेषाधिकार सहित उद्घोषणा, आदेश, अध्यादेश जारी करने से संबंधित, अपराधियों की सजाओं को कम करने या माफ करने से संबंधित, राज्य से मेरी अनुपस्थिति की अवधि के दौरान युवराज श्री कर्ण सिंह जी द्वारा इस्तेमाल किये जायेंगे। द्वारा हरि सिंह महाराजाधिराज"।

दिल्ली में एक बैठक में एक मई १६४६ को सरदार पटेल ने हरि सिंह को सलाह दी कि वह राज्य से अस्थायी तौर पर बाहर चले जायें। यह परामर्श दिया गया कि महाराजा की अनुपस्थिति में उनके द्वारा युवराज कर्ण सिंह को रीजेंट नियुक्त किया जाये। १८ मई १६४६ को नेहरू ने पटेल को जो पत्र लिखा था, उसके अनुसार, "मुझे उम्मीद है कि आप महाराजा और महारानी एवं साथ ही साथ युवराज को हमारे और शेख अब्दुल्ला व उनके साथियों के बीच हुए समझौतों के बारे में समझा देंगे। लिखित समझौते में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं है कि महाराजा राज्य से बाहर चले जायेंगे। लेकिन हमने निजी तौर पर यह आश्वासन दिया था और स्वाभाविक तौर पर हमें इसका पालन करना चाहिए।" २३ मई १६४६ को पटेल ने रीजेंट और महाराजा के प्रतिनिधि के तौर पर युवराज कर्ण सिंह की सुरक्षा का आश्वासन दिया। कहा जाता है कि नई दिल्ली के इंपीरियल होटल में रहने के दौरान हरि सिंह ने अपनी सहमति दे दी थी। यह भी कहा जाता है कि महाराजा हरि सिंह ने उन संबंधित निर्देशों पर दिल्ली में २० जून १६४६ को हस्ताक्षर कर दिये ताकि युवराज कर्ण सिंह को रीजेंट बनाए जाने के फैसले को लागू किया जा सके। २० जून १६४६ को श्री कर्ण सिंह रीजेंट के तौर पर पहली बार श्रीनगर गये (उद्घोषणा को उसी रूप में उद्धृत किया गया है, जैसी कि वह ७ हर २००६ के सरकारी गजट में प्रस्तुत की गई थी। अगस्त १६५३ में शेख

अब्दुल्ला को प्रधान मंत्री के पद से हटाए जाने के लिए रीजेंट की उन्हीं शक्तियों का इस्तेमाल किया गया था।

लेकिन इसके बाद २६ अप्रैल १९६१ को मुंबई (तत्कालीन बॉम्बे) में अपनी मौत से पहले कभी भी हरि सिंह जम्मू और कश्मीर नहीं लौटे। इसकी वजहों की चर्चा को हम जानबूझ कर छोड़ रहे हैं क्योंकि आधिकारिक तौर पर इसके बारे में कुछ भी व्यक्त नहीं किया गया है। लेकिन एक बात निश्चित है, और वह यह कि, इसके बाद जम्मू और कश्मीर से संबंधित निर्णयों में न तो हरि सिंह से सलाह ली गई और न ही उन्हें शामिल किया गया, यहां तक कि एक बुजुर्ग के तौर पर भी नहीं। उनकी तरफ से सारे अधिकार और दायित्व रीजेंट युवराज कर्ण सिंह (जो बाद में जम्मू और कश्मीर के सदर-ए-रियासत बने) द्वारा निभाये गये।

अंतिम सत्ता महाराजा अथवा रीजेंट में निहित थी

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अंतिम तौर पर भारतीय संविधान या जम्मू और कश्मीर का संविधान बनने तक स्थानीय मुद्दों (१९४७ के विलय के लेखपत्र में शामिल मुद्दों के अलावा) के मामले में राज्य के प्रमुख के तौर पर अंतिम सत्ता केवल महाराजा या और रीजेंट कर्ण सिंह में निहित थी।

३० अक्टूबर १९४७ को महाराजा द्वारा जारी की गई उद्घोषणा (जिसमें शेख अब्दुल्ला को आपातकालीन प्रशासन का अध्यक्ष नियुक्त किया गया), ५ मार्च १९४८ को महाराजा द्वारा जारी की गई उद्घोषणा (जिसमें शेख अब्दुल्ला को अंतरिम सरकार का प्रधान मंत्री नियुक्त किया गया, चुनाव के जरिए नेशनल एसेंबली के गठन का आदेश दिया गया और नेशनल एसेंबली द्वारा संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए कहा गया जिसे महाराजा के पास अनुमोदन के लिए भेजा जाना था) और जून १९४९ में जारी की गई उद्घोषणा (जिसमें उन्होंने स्वास्थ्य संबंधी कारणों से अस्थायी तौर पर राज्य छोड़ने का फैसला किया और इस अवधि के लिए राज्य के शासन से संबंधित सभी शक्तियां और अधिकार युवराज श्री कर्ण सिंह जी बहादुर को सौंप दिये) पर काफी ध्यान दिये जाने की जरूरत है। इसके बाद १ मई १९५१ को युवराज कर्ण सिंह द्वारा एक और उद्घोषणा जारी की गयी जिसमें उन्होंने महाराजा हरि सिंह द्वारा ५ मार्च १९४८ को जारी की गई उद्घोषणा को संशोधित किया था। इस उद्घोषणा में संविधान-सभा के चुनाव और जम्मू और कश्मीर के संविधान के निर्माण की बात कही गई थी। हालांकि कारण स्पष्ट नहीं किये गये और न ही परिस्थितियों की विस्तार से व्याख्या की गई, लेकिन महाराजा हरि सिंह के प्राधिकार का इस्तेमाल करते हुए युवराज कर्ण सिंह ने मार्च १९४८ की उद्घोषणा के उन उपबंधों का जिक्र किया, जो मई १९५१ के आकलन के अनुसार मौजूदा परिस्थितियों की जरूरतों को पूरा नहीं करती थीं, इन उपबंधों में उपबंध ४ [जैसे ही सामान्य अवस्था बहाल कर ली जाती है, मेरी मंत्रिपरिषद वयस्क मताधिकार पर आधारित नेशनल एसेंबली के गठन के लिए उचित कदम उठाएगी। इसमें इस सिद्धांत का ध्यान रखा जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधियों की संख्या उस क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में हो (जहां तक व्यावहारिक हो सके)।], उपबंध ५ (नेशनल एसेंबली द्वारा बनाए गए संविधान में अल्पसंख्यकों को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया जाएगा और इसमें अंतःकरण की स्वतंत्रता, भाषण की स्वतंत्रता और सभा करने की स्वतंत्रता की गारंटी देने वाले उपयुक्त प्रावधान होंगे) और उपबंध ६ (जैसे ही नए संविधान के निर्माण का काम पूरा हो जाता है, नेशनल एसेंबली अपनी मंत्रिपरिषद के जरिए इसे मेरी स्वीकृति के लिए

भेजेगी) शामिल थे।

(जम्मू और कश्मीर राज्य के प्रमुख द्वारा एक मई १९५१ को जारी की गई उद्घोषणा का अवतरण) जम्मू और कश्मीर के लोगों की यह सामान्य इच्छा है कि राज्य के संविधान के निर्माण के लिए एक संविधान सभा का गठन किया जाये। आम तौर पर यह महसूस किया जा रहा है कि राज्य के भविष्य के कल्याण को देखते हुए इस सभा के गठन में और देरी नहीं की जा सकती। ऐसे में चूंकि महाराजा के ५ मार्च १९४८ की उद्घोषणा की शर्तों, जो नेशनल एसेंबली के गठन के संबंध में हैं, में से प्रवर्तनशील भाग के उपबंध ४ से ६ मौजूदा परिस्थितियों की जरूरतों की संगति में नहीं हैं, इसलिए मैं युवराज कर्ण सिंह निम्नवर्णित निर्दिष्ट करता हूं–

(१) जम्मू और कश्मीर राज्य के संविधान के निर्माण के उद्देश्य से एक संविधान सभा का गठन किया जाएगा जिसमें लोगों के प्रतिनिधि हों जिनका चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ हो।

(२) इन चुनावों के उद्देश्य से राज्य को ४० हजार या इसके लगभग जनसंख्या वाले (जैसा संभव हो सके) निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाएगा और प्रत्येक क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाएगा। सरकार द्वारा एक परिसीमन समिति का गठन किया जाएगा जो निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या के बारे में और प्रत्येक क्षेत्र की सीमाओं के बारे में सुझाव देगी।

(३) संविधान सभा के लिए चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा। कोई भी व्यक्ति जो राज्य की प्रजा हो, चाहे वह किसी भी वर्ग से संबंधित हो, जिसकी उम्र एक मार्च को २१ सालों से कम न हो, इतनी अवधि से निर्वाचन क्षेत्र में रह रहा हो, जितना कि नियमों में उल्लिखित हो, निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं की सूची में अपना नाम दर्ज कराने के लिए अर्ह होगा। लेकिन यदि किसी व्यक्ति का मानसिक संतुलन ठीक न हो, या किसी सक्षम न्यायालय द्वारा उसके बारे में इस आशय की घोषणा की गई हो, पंजीकरण के लिये योग्य नहीं माना जायेगा।

(४) इस चुनाव में मतदान प्रत्यक्ष और गुप्त मत के जरिए होगा।

(५) उसके बाद संविधान सभा को यह शक्ति होगी कि सदस्यता से संबंधित किसी रिक्ति को स्वीकार न करे।

(६) संविधान सभा स्वयं का कार्यक्रम बनायेगी और अपनी प्रक्रियाओं के संचालन व कार्यों के प्रबंध संबंधी नियम बनायेगी। सरकार ऐसे नियम बनायेगी और ऐसे निर्देश व आदेश जारी करेगी जो इस उद्घोषणा की शर्तों को पूरा करने के लिए आवश्यक होंगे।

युवराज कर्ण सिंह द्वारा जारी की गई उद्घोषणा ने जम्मू और कश्मीर के भावी संविधान में अल्पसंख्यकों के हितों के संरक्षण के समावेश के उपबंध को हटा दिया।

यद्यपि इस उद्घोषणा से यह भी समझा जा सकता है कि संविधान सभा द्वारा बनाए संविधान के मसौदे की बदली परिस्थितियों में युवराज महाराजा द्वारा स्वीकृति भी जरूरी नहीं थी, लेकिन युवराज कर्ण सिंह की उम्र को देखते हुए ऐसे बड़े निर्णय लेने या विलय के लेखपत्र में अप्रत्यक्ष संशोधन की अनुमति महाराजा द्वारा निश्चित तौर पर युवराज कर्ण सिंह को नहीं दी गई थी। जम्मू और कश्मीर के अंतिम संविधान में अल्पसंख्यकों के हितों के खास संरक्षण के उपबंध शामिल नहीं किये गये और न ही ये मसौदा समिति के सामने शेख द्वारा सुझाई गई बातों के आसपास भी थे।यदि महाराजा राज्य में मौजूद होते तो शायद शेख अब्दुल्ला अनियंत्रित तरीके से आगे नहीं बढ़ पाते, इसलिए उन्होंने अपने सामाजिक दबाव का भारतीय प्रधानमंत्री पर इस्तेमाल किया ताकि महाराजा हरि सिंह को राज्य से निकाला जा सके।

अगर कोई यह तर्क देता है कि युवराज के पास वे सारी शक्तियां और उद्देश्य थे कि वह नये संविधान के संदर्भ में सारी शक्तियां संविधान सभा को सौंप दें, तो इस बात को भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि राज्य के प्रमुख के तौर पर युवराज कर्ण सिंह द्वारा जो भी आदेश सहमति पत्र जारी किये गये, वे भी वैध और निर्विवाद थे।

प्रजा सभा– संवत १९९६ का जम्मू और कश्मीर का संविधान– संविधान सभा– विधान सभा

जम्मू और कश्मीर का संवत १९९६ (१९३९ ईसवी) का संविधान महाराजा के प्राधिकार से समय-समय पर संशोधित किया गया था। एक मई १९५१ की उद्घोषणा की दशाओं के अनुरूप संविधान सभा के लिए चुनाव कराए गए। संविधान सभा के लिए चुने गए सभी ७५ सदस्य नेशनल कांफ्रेंस से संबंधित थे। संविधान सभा की पहली बैठक ३१ अक्टूबर १९५१ को श्रीनगर में हुई, जिसकी अध्यक्षता मौलाना मसूदी ने की।

जम्मू और कश्मीर का संवत १९९६ (१९३९ ईसवी) का संविधान रीजेंट (युवराज कर्ण सिंह) द्वारा १९५१ ईसवी (जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ को संशोधित करने संबंधी कानून, २००८ की अधिनियम संख्या १७, १९५१ ईसवी) में बदला गया। अन्य बातों के अलावा इसमें प्रजा सभा के बदले विधान सभा (लेजिस्लेटिव एसेंबली) शब्द का इस्तेमाल किया गया और कहा गया कि जब तक नया संविधान बन कर स्वीकृत नहीं हो जाता, तब तक संविधान सभा ही विधान सभा के तौर पर कार्य करेगी। साथ ही कहा गया कि प्रधानमंत्री और अन्य मंत्री राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होंगे और प्रधानमंत्री अपनी मंत्रिपरिषद का अध्यक्ष होगा।

१९९६ के अधिनियम १४ की धारा ९ के संशोधन में कहा गया कि मंत्रिपरिषद में महामहिम द्वारा नियुक्त प्रधानमंत्री होगा और इसमें अन्य मंत्री होंगे जो प्रधानमंत्री की सलाह पर महामहिम द्वारा नियुक्त किये जायेंगे। प्रधानमंत्री और अन्य मंत्री राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होंगे। इसके अलावा 'महामहिम की पूर्व स्वीकृति से प्रधानमंत्री द्वारा' शब्दों को हटा कर 'मंत्रिपरिषद द्वारा' का इस्तेमाल किया गया। राज्य की व्यवस्थापिका में महामहिम के साथ एक सदन होगा जिसे लेजिस्लेटिव एसेंबली (विधान सभा) के नाम से जाना जायेगा। इस अधिनियम के तहत विधान सभा की शक्तियों का इस्तेमाल संविधान सभा के द्वारा किया जायेगा और इस अधिनियम में विधान सभा के संदर्भ का आशय इसी अनुरूप लगाया जायेगा, जब तक १९५१ की उद्घोषणा के द्वारा प्रावधान नहीं बनाये जाते या इसके तहत संविधान सभा द्वारा कानून नहीं बना दिये जाते। विधान सभा द्वारा स्थायी आदेश और अधिनियम बनाये जा सकते हैं, हालांकि यह इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत प्रक्रियाओं और

कार्य के संचालन के नियमन के अनुरूप होना चाहिए। जब तक उपधारा (३) के तहत अधिनियम नहीं बनाये जाते, प्रजा सभा से संबंधित प्रक्रियाओं के नियम और स्थायी आदेश विधान सभा पर लागू होंगे, हालांकि विधान सभा के स्पीकर द्वारा इसमें संशोधन और रूपांतरण किये जा सकते हैं। (जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ को संशोधित करने के लिए अधिनियम, २००८ की अधिनियम संख्या १७)। ऐसे में यह आवश्यक है कि जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ को संशोधित किया जाये ताकि इसे ५ मार्च १६४८, २० जून १६४६ और २० अप्रैल १६५१ की उद्घोषणाओं की भावनाओं की संगति में लाया जा सके और राज्य के वास्तविक प्रशासन में लाये गये बदलाव दिख सकें।

ऐसे में जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ की धारा ५ के तहत आरक्षित शक्तियों के प्रयोग के संदर्भ में महामहिम द्वारा जारी उद्घोषणा मान्य होगी जो सरकारी गजट के ७ हर २००६ के विशेष अंक में प्रकाशित है। युवराज श्री कर्ण सिंह जी बहादुर प्रसन्नता के साथ घोषित करते हैं कि लघु शीर्षक एवं आरंभिका इस अधिनियम को जम्मू और कश्मीर संवैधानिक (संशोधन) अधिनियम २००८ कहा जायेगा। (२) यह तत्काल प्रभाव से लागू हो जायेगा। जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ के अधिनियम १४ की धारा ४ में संशोधनः

२- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ के अधिनियम १४ की धारा ४ में ”उन स्थितियों को छोड़ कर जिनके बारे में इस अधिनियम के तहत ऐसा करने का निषेध होगा या महामहिम द्वारा अन्य तरीके से दिए गए आदेश के अनुरूप“ को हटाकर ”परिषद की सलाह पर, उन स्थितियों को छोड़ कर जिनके बारे में इस अधिनियम के तहत ऐसा करने का निषेध होगा और उन विषयों को छोड़कर जो भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-एक में उल्लिखित हैं क्योंकि इन विषयों पर राज्य के लिए कानून बनाने की शक्ति भारतीय संसद के पास है“ का इस्तेमाल किया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ के अधिनियम १४ की धारा ५ का लोप :

३- इस अधिनियम की धारा ५ को हटा दिया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ के अधिनियम १४ की धारा ६ में संशोधन :

४- इस अधिनियम की धारा ६ में “धाराओं ४ और ५ के प्रावधानों के तहत, साथ ही कामकाज और पोर्टफोलियो के वितरण के नियमों के तहत और विशेष मुद्दों पर

महामहिम से परामर्श के बाद या उनको रिपोर्ट दिये जाने के बाद या उनकी सहमति के उपरांत उनके द्वारा या उनकी तरफ से समय-समय पर दिए गए सामान्य या विशेष आदेशों के तहत" को हटाकर अधिनियम के प्रावधानों के तहत का इस्तेमाल किया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ में धारा ७ का प्रतिस्थापन :

५- अधिनियम की धारा ७ को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जायेगा- "मंत्रिपरिषद का गठन-७- मंत्रिपरिषद में महामहिम द्वारा नियुक्त प्रधानमंत्री होगा और इसमें अन्य मंत्री होंगे जो प्रधानमंत्री की सलाह पर महामहिम द्वारा नियुक्त किये जायेंगे। प्रधानमंत्री और अन्य मंत्री राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होंगे। प्रधानमंत्री इस परिषद का अध्यक्ष होगा।"

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ९ में संशोधन :

६- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ९ में 'महामहिम की पूर्व स्वीकृति से प्रधानमंत्री द्वारा' शब्दों को हटा कर 'मंत्रिपरिषद द्वारा' का इस्तेमाल किया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ में नई धाराओं ९-अ और ९-ब का समावेशन :

७- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ में धारा ९ के उपरांत ये धाराएं समावेशित की जायेंगी-

उपमंत्रियों की नियुक्ति- ९-अः

१. प्रधानमंत्री की सलाह पर महामहिम द्वारा उन मंत्रालयों में कार्य करने के लिये उपमंत्रियों की नियुक्ति की जायेगी, जहां मंत्रिपरिषद को आवश्यक लगे।

२. विधान सभा के सदस्यों के बीच से ही उपमंत्रियों का चयन किया जायेगा।

३. अपने कार्यालयों में कर्तव्य के निर्वहन का आरंभ करने से पहले उपमंत्रियों को अनुसूची एक में वर्णित तरीके से प्रधानमंत्री के समक्ष पद की शपथ लेनी होगी।

मंत्रियों और उपमंत्रियों के वेतन- ९-बः

१. मंत्रियों के वेतन और भत्ते विधान सभा द्वारा समय-समय पर बनाये गये नियमों के अधीन तय होंगे। और जब तक विधान सभा द्वारा इस बारे में नियम नहीं बनाये जाते, तब तक मंत्रियों को वह वेतन और भत्ते दिये जायेंगे जो उन्हें विधान सभा के आरंभ से ठीक पहले प्राप्त होते थे।

२. उपमंत्रियों के वेतन और भत्ते विधान सभा द्वारा समय-समय पर बनाये गये

नियमों के अधीन तय होंगे। और जब तक विधान सभा द्वारा इस बारे में नियम नहीं बनाये जाते, तब तक उपमंत्रियों को अनुसूची २ में वर्णित नियमों के अनुसार वेतन और भत्ते दिये जायेंगे।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा १० में संशोधन :

८- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा १० में उपधारा (३) के उपरांत यह उपधारा जोड़ी जायेगी-

परिषद एडवोकेट जनरल के कर्तव्यों से संबंधित नियम बना सकेगी, जो इस अधिनियम की असंगति में नहीं होने चाहिए।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा १२ का लोप :

९- इस अधिनियम की धारा १२ को हटा दिया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ के भाग ३ में ”प्रजा सभा“ को हटा कर ”विधान सभा“ शब्दों का प्रतिस्थापन :

१०- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ के भाग ३ में जहां-जहां ”प्रजा सभा“ शब्द आते हैं, उन्हें हटा कर वहां-वहां ”विधान सभा“ शब्दों का इस्तेमाल किया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ में धारा १३ का प्रतिस्थापन :

११-अधिनियम की धारा १३ को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जायेगा-

”व्यवस्थापिका : १३

१. राज्य की व्यवस्थापिका में महामहिम सहित एक सदन होगा जिसे लेजिस्लेटिव एसेंबली (विधान सभा) के नाम से जाना जायेगा।

२. इस अधिनियम के तहत विधान सभा की शक्तियों का इस्तेमाल संविधान सभा के द्वारा किया जायेगा और इस अधिनियम में विधान सभा के संदर्भ का आशय इसी अनुरूप लगाया जायेगा, जब तक २० अप्रैल १९५१ की उद्घोषणा के द्वारा प्रावधान नहीं बनाये जाते या इसके तहत संविधान सभा द्वारा कानून नहीं बना दिये जाते।

३. विधान सभा द्वारा स्थायी आदेश दिये जा सकते हैं और अधिनियम बनाये जा सकते हैं, हालांकि यह इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत प्रक्रियाओं और कार्य के संचालन के नियमन के अनुरूप होना चाहिए।

४. जब तक उपधारा (३) के तहत अधिनियम नहीं बनाये जाते, प्रजा सभा से संबंधित प्रक्रियाओं के नियम और स्थायी आदेश विधान सभा पर लागू होंगे, हालांकि विधान

सभा के स्पीकर द्वारा इसमें संशोधन और रूपांतरण किये जा सकते हैं।"
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा १४ का लोप : १२- इस अधिनियम की धारा १४ को हटा दिया जायेगा।
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ में धारा १५ का प्रतिस्थापन : १३- अधिनियम की धारा १५ को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जायेगा-
"विधान सभा की बैठक : १५
१. साल भर में कम से कम दो बार विधान सभा के सत्र आयोजित होंगे और पहले सत्र की आखिरी बैठक और उसके अगले सत्र की पहली बैठक के बीच छः महीने से अधिक का अंतर नहीं होगा।
२. इस धारा के प्रावधानों के अनुरूप, विधान सभा का स्पीकर समय-समय पर (अ) विधान सभा को स्वविचारित उचित समय व उचित स्थान पर बैठक के लिये बुलायेगा, (ब) विधान सभा को स्थगित करेगा।"
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा १६ में संशोधनः १४- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा १६ में (१) उपबंध (बी) में "या अन्य कोई मंत्री" शब्द को हटा दिया जायेगा, और उपबंध (सी) में "प्रेसिडेंट" शब्द को हटा कर "स्पीकर" शब्द का इस्तेमाल किया जायेगा।
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा १७ में संशोधनः १५- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा १७ में "प्रेसिडेंट" शब्द को हटा कर "स्पीकर" शब्द का इस्तेमाल किया जायेगा।
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ में धारा १९ का प्रतिस्थापनः १६- अधिनियम की धारा १९ को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जायेगा-
"स्पीकर और डिप्टी स्पीकरः १९
(१) विधान सभा इस सभा से दो सदस्यों को क्रमशः स्पीकर और डिप्टी स्पीकर बनाने के लिए चुनेगी और जब स्पीकर या डिप्टी स्पीकर का पद रिक्त होगा, स्थिति के अनुरूप सभा अन्य सदस्यों को स्पीकर या डिप्टी स्पीकर के पद के लिए चुन सकती है। जब तक विधान सभा स्पीकर और डिप्टी स्पीकर का चुनाव करती है, उपधारा (१) के तहत, संविधान सभा का प्रेसिडेंट विधान सभा के स्पीकर और डिप्टी स्पीकर के तौर पर कार्य करेगा।"
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा २० में संशोधनः १७- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४

की धारा २० में
(१) उपधारा (१) को हटा दिया जायेगा,
(२) उपधारा ए को उपधारा (१) के रूप में बदल दिया जायेगा और इस उपधारा में
(अ) "डिप्टी प्रेसिडेंट" की जगह "डिप्टी स्पीकर" शब्दों का इस्तेमाल किया जायेगा और जहां-जहां "प्रेसिडेंट" शब्द हो, वहां-वहां उसे हटा कर "स्पीकर" शब्द का इस्तेमाल किया जायेगा। और (ब) "मंत्रिपरिषद के अनुमोदन से" को हटा दिया जायेगा।
(३) उपधारा (३) की जगह यह उपधारा ले लेगी-
"(२) विधान सभा की किसी बैठक में स्पीकर या डिप्टी स्पीकर की अस्थायी अनुपस्थिति की स्थिति में विधान सभा की प्रक्रियाओं के नियमों के अनुरूप चुना गया कोई व्यक्ति स्पीकर के तौर पर कार्य कर सकता है या यदि ऐसा कोई व्यक्ति उपस्थित नहीं है तो सभा द्वारा तय किया गया कोई अन्य व्यक्ति स्पीकर के तौर पर कार्य कर सकता है"।
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ के अधिनियम १४ की धारा २१ में संशोधनः १८- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ के अधिनियम १४ की धारा २१ में "डिप्टी प्रेसिडेंट" की जगह "स्पीकर या डिप्टी स्पीकर" शब्दों का इस्तेमाल किया जायेगा।
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ के अधिनियम १४ में धारा २२ का प्रतिस्थापनः १६- अधिनियम की धारा २२ को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जायेगा-
"संसदीय सचिव- २२
(१) परिषद विधान सभा के सदस्यों के बीच से उस अवधि के लिए संसदीय सचिवों की नियुक्ति कर सकती है, उन दशाओं और शर्तों के अनुरूप जो परिषद को उचित लगें।
(२) परिषद संसदीय सचिवों के कर्तव्यों से संबंधित नियम बना सकेगी, "जो इस अधिनियम के प्रावधानों की असंगति में नहीं होने चाहिए"।
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ के अधिनियम १४ में धारा २३ का प्रतिस्थापनः २०- अधिनियम की धारा २३ को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जायेगा-
"विधान सभा की वैधानिक शक्तियां- २३
विधान सभा इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत पूरे राज्य या राज्य के किसी भाग के लिये और राज्य के विषयों पर विधि बना सकती है, हालांकि उन विषयों को छोड़कर जो भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में उल्लिखित हैं क्योंकि इन विषयों पर राज्य के लिए कानून बनाने की शक्ति भारतीय संसद के पास है।"
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १६६६ के अधिनियम १४ की धारा २४ का

लोपः २१- इस अधिनियम की धारा २४ को हटा दिया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा २५ में संशोधनः २२- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा २५ में

(१) उपधारा (१) में "प्रेसिडेंट" की जगह "स्पीकर" शब्द का इस्तेमाल किया जायेगा।

(२) उपधारा (३) में जहां-जहां "एक बटा पांच" शब्द हो, वहां-वहां उसे हटा कर "एक बटा चार" शब्द का इस्तेमाल किया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा २६, २७ और २८ का लोपः २३- इस अधिनियम की धारा २६, २७ और २८ को हटा दिया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ में धारा ३० का प्रतिस्थापनः २४- अधिनियम की धारा ३० को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जायेगा-

"वेतन और भत्तेः ३०

स्पीकर, डिप्टी स्पीकर और सभा के अन्य सदस्यों के वेतन व भत्ते विधान सभा द्वारा बनाये गये नियमों के अधीन तय होंगे। और जब तक विधान सभा द्वारा इस बारे में नियम नहीं बनाये जाते, तब तक इन लोगों को अनुसूची ३ में वर्णित नियमों के अनुसार वेतन और भत्ते दिये जायेंगे।"

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ३१ में संशोधनः २५- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ३१ की उपधारा (३) में "अंग्रेजी में" की जगह "उर्दू और अंग्रेजी दोनों में" शब्द का इस्तेमाल किया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ३२ में संशोधनः २६- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ३२ में प्रावधान को समाप्त कर दिया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ में धारा ३८ का प्रतिस्थापनः २८- अधिनियम की धारा ३८ को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जायेगा-

"राज्य के राजस्व पर भारित व्यय- ४३

निम्नलिखित व्यय राज्य के राजस्व पर भारित व्यय माने जायेंगे-

१. महामहिम के भत्ते और उनके कार्यालय से संबंधित अन्य व्यय

(ब) ऋण प्रभार, जिसके लिए राज्य उत्तरदायी है, जिसमें शामिल हैं ब्याज, डूबी पूंजी से संबंधित प्रभार व प्रतिदान प्रभार और कर्ज जुटाने और कर्ज के सेवा प्रतिदान से संबंधित अन्य व्यय

(स) हाई कोर्ट के न्यायाधीशों और महामहिम के न्यायिक परामर्शदाता मंडल (बोर्ड अह्फ ज्यूडिशियल एडवाइजर्स) के सदस्यों के वेतन, भत्ते और पेंशन
(द) संविधान सभा और इसके स्टाफ से संबंधित व्यय
(य) वह धन जिसकी जरूरत किसी आर्बिटल ट्रिब्यूनल या न्यायालय द्वारा किसी फैसले के निबटान के लिए पड़े
(र) अन्य व्यय जो इस अधिनियम द्वारा या विधान सभा के किसी अधिनियम के द्वारा लगाये जायें।"
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ४५ में संशोधनः ३२- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ४५ में
२.उपधारा (१) के अंत में पूर्ण विराम को मिटा दिया जायेगा। और ये शब्द जोड़े जायेंगे-
"लेकिन इस उपधारा में किसी भी चीज का आशय विधान सभा में इनमें से किसी अनुमान के बारे में बहस के निषेध से नहीं लगाया जायेगा।"
(२) उपधारा (२) के प्रावधानों का लोप हो जायेगा।
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ में धारा ४६ का प्रतिस्थापन : ३३- अधिनियम की धारा ४६ को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जायेगा-
"पूरक व्यय- ४६
किसी भी वित्तीय वर्ष में राज्य के राजस्व पर, उस साल के लिए तय किये गये व्यय के अलावा एक अतिरिक्त व्यय आवश्यक हो जाये, तो परिषद के पास उस व्यय को प्राधिकृत करने का अधिकार होगा। विधान सभा के एक स्टेटमेंट के सहित उस साल का वित्तीय विवरण और पूर्ववर्ती धाराओं के प्रावधान उस व्यय के विवरण के लिए प्रभावी माने जायेंगे क्योंकि उनका संबंध वार्षिक वित्तीय विवरण से होगा।"
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ४८ में संशोधनः ३४- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ४८ की उपधारा (बी) में "एक या इससे अधिक न्यायाधीश" की जगह "दो या इससे अधिक न्यायाधीश" शब्द का इस्तेमाल किया जायेगा।
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ४९ में संशोधनः ३५- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ४९ में "५५" की जगह "साठ" शब्द का इस्तेमाल किया जायेगा। और पहला प्रावधान हटा दिया जायेगा।
जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ५१ में

संशोधनः ३६- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ५१ में जहां-जहां "ब्रिटिश इंडिया" शब्द हो, वहां-वहां उसे हटा कर "इंडिया" शब्द का इस्तेमाल किया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ में धारा ७२ का प्रतिस्थापनः ३७- अधिनियम की धारा ७२ को इस प्रकार प्रतिस्थापित किया जायेगा-

"विशेषाधिकार- ७२

महामहिम द्वारा दंड की माफी, कमी या दंड से संबधित राहत दिए जाने के विशेषाधिकार का इस अधिनियम के प्रावधानों द्वारा अवमूल्यन नहीं किया जायेगा।"

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ७५ में संशोधनः ३८- जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ७५ में "धारा ५ के प्रावधानों के अधीन" शब्दों को हटा दिया जायेगा।

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धाराओं ७७ और ७८ का लोपः ३९- इस अधिनियम की धाराओं ७७ और ७८ को हटा दिया जायेगा।)

अतः संविधान सभा जम्मू और कश्मीर की विधान सभा थी और जब संविधान का निर्माण हो गया तो संविधान सभा के तौर पर इसकी भूमिका समाप्त हो गयी। इसके बाद जहां कहीं भी संविधान सभा का संदर्भ आता है, इसे विधान सभा के अर्थ में ग्रहण किया जाना चाहिए। ऐसे में, जब संविधान सभा ने जम्मू और कश्मीर के संविधान के निर्माण का काम पूरा कर लिया, जम्मू और कश्मीर के संविधान और भारत के संविधान में से कुछ भी अखंडनीय नहीं था, क्योंकि इस अवधि से ले कर १९५६ तक इसने विधान सभा के तौर पर भी कार्य किया था।

लोकतांत्रिक संविधान के निर्माण की प्रक्रिया में संविधान सभा ने विभिन्न प्रस्ताव पारित किये और संविधान सभा के कुछ प्रस्तावों को रीजेंट द्वारा स्वीकार किया गया और जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ संवत (१९३९ ईसवी) को तदनुरूप कई बार संशोधित भी किया गया। २० अगस्त १९५२ को संविधान सभा ने राज्य संविधान व्यवस्थापिका के अध्यक्ष के तौर पर एक निर्वाचित सदर-ए-रियासत बनाये जाने का प्रस्ताव पारित किया और महाराजा की तरफ से रीजेंट ने संवत १९९६ के जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ को तदनुरूप संशोधित कर दिया ।

१७ नवंबर १९५२ से लागू किये गये इस संशोधन के अनुसार राज्य के अध्यक्ष का नामकरण सदर-ए-रियासत के तौर पर किया गया और सदर-ए-रियासत की योग्यता व अधिकारिता की भी परिभाषा की गयी। जहां-जहां भी महामहिम शब्द था, उसे हटा

कर वहां-वहां सदर-ए-रियासत शब्द का इस्तेमाल किया गया। संविधान सभा ने नवंबर १९५२ में युवराज का चुनाव सदर-ए-रियासत के तौर पर किया। इस तरह से जम्मू और कश्मीर में १०६ सालों से चले आ रहे वंशानुगत शासन का अंत हो गया। स्पष्ट तौर पर कहा गया कि सदर-ए-रियासत के चुनाव, कार्यकाल और उनके कार्यालय से संबंधित सभी अन्य मुद्दों का नियमन २१ अगस्त १९५२ के संविधान सभा के प्रस्ताव की संगति में किया जायेगा- जैसे कि (१) राज्य का अध्यक्ष वह व्यक्ति होगा जिसे राज्य की विधान सभा की अनुशंसा पर संघ के राष्ट्रपति से स्वीकृति हासिल होगी। (२) उसका कार्यकाल राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर करेगा, राज्य के अध्यक्ष को सदर-ए-रियासत के नाम से जाना जायेगा, सदर-ए-रियासत के पास वे शक्तियां और उत्तरदायित्व होंगे जो संविधान सभा द्वारा भावी संविधान में उल्लिखित किये जायेंगे। और जब तक यह संविधान नहीं बन जाता, तब तक सदर-ए-रियासत के पास वे शक्तियां और उत्तरदायित्व होंगे जो जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के तहत महामहिम द्वारा इस्तेमाल की जाती हैं, २००८ के अधिनियम संख्या १७ के संशोधन के अनुरूप।

(संविधान सभा का राज्य के अध्यक्ष से संबंधित प्रस्ताव, १९५२- चौथा सत्र, २० अगस्त १९५२।

प्रस्ताव

दस जून १९५२ को बेसिक प्रिंसिपल्स कमिटी की अंतरिम रिपोर्ट में पेश की गई सिफारिशों को इस सभा ने अंगीकृत कर लिया। १२ जून १९५२ के इस प्रस्ताव के जरिये इस सभा ने यह आदेश दिया कि इस तरह अंगीकृत की गई सिफारिशों को लागू किया जाये और इस उद्देश्य के लिए इसने मसौदा समिति को उचित प्रस्ताव पेश करने को कहा।

ऐसे में १२ जून १९५२ के प्रस्ताव को आगे बढ़ाते हुए और मसौदा समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद इस सभा ने प्रस्तावित किया है कि-

1(I) राज्य का अध्यक्ष वह व्यक्ति होगा जिसे राज्य की विधान सभा की अनुशंसा पर संघ के राष्ट्रपति से स्वीकृति हासिल होगी।

(ii) उसका कार्यकाल राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर करेगा।

(iii) राज्य का अध्यक्ष, संबंधित प्रावधानों के अनुरूप अपने हाथों से राष्ट्रपति को संबोधित पत्र के जरिए इस्तीफा देगा। राज्य के अध्यक्ष का कार्यकाल अपना कार्यालय संभालने की तिथि से लेकर पांच सालों तक होगा।

अपने कार्यकाल के उपरांत भी वह तब तक अपने पद पर बना रहेगा जब तक उसका उत्तराधिकारी कार्यभार ग्रहण न कर ले। अनुच्छेद एक के उप अनुच्छेद (१) के अनुरूप

राज्य के अध्यक्ष के बारे में राज्य की विधान सभा की अनुशंसा चुनाव के जरिये होगी। राज्य के अध्यक्ष के चुनाव की प्रक्रिया, उसके लिए योग्यताएं और उससे संबंधित अन्य सभी बातों का वर्णन संविधान में होगा। लेकिन जब तक इनके बारे में संविधान में वर्णन नहीं हो जाता, तब तक, इस बारे में इस प्रस्ताव के परिशिष्ट में दिये गये नियम लागू होंगे।

४. राज्य के अध्यक्ष को सदर-ए-रियासत के नाम से जाना जायेगा।

५. सदर-ए-रियासत को वे सभी परिलब्धियां, भत्ते और विशेषाधिकार प्राप्त होंगे जिनका वर्णन संविधान में होगा, लेकिन जब तक इनके बारे में संविधान में वर्णन नहीं हो जाता, तब तक, इन सभी के बारे में वे नियम लागू होंगे जो एसेंबली द्वारा एक अलग प्रस्ताव के जरिये निर्णीत किये जायेंगे।

६. सदर-ए-रियासत के पास वे शक्तियां और उत्तरदायित्व होंगे जो संविधान सभा द्वारा भावी संविधान में उल्लिखित किये जायेंगे। और जब तक यह संविधान नहीं बन जाता, तब तक सदर-ए-रियासत के पास वे शक्तियां और उत्तरदायित्व होंगे जो जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ (संवत) (१९३९ ईसवी) के तहत महामहिम द्वारा इस्तेमाल की जाती हैं, २००८ (संवत) (१९५१ ईसवी) के अधिनियम संख्या १७ के संशोधन के अनुरूप।

७. मृत्यु, इस्तीफा या अन्य किसी कारण से सदर-ए-रियासत के पद के अचानक खाली हो जाने की दशा में सदर-ए-रियासत की शक्तियां और उत्तरदायित्व का इस्तेमाल, जब तक नवनिर्वाचित सदर-ए-रियासत प्रस्ताव में दी गई प्रक्रिया के अनुरूप पद न संभाल ले, उस व्यक्ति द्वारा किया जायेगा जिसका नाम कार्यकारी सदर-ए-रियासत के रूप में राज्य सरकार द्वारा राष्ट्रपति को सुझाया जाये।

८. यह सभा इस बीच सदर-ए-रियासत द्वारा संविधान के उल्लंघन या कदाचार किए जाने की स्थिति में उचित उपाय उपलब्ध करायेगी।

यह सभा आगे प्रस्तावित करती है कि जम्मू और कश्मीर राज्य के प्रधानमंत्री इस प्रस्ताव की एक प्रति भारत सरकार को भेजने के लिए प्राधिकृत हैं ताकि इसे लागू कराने के लिए उचित कदम उठाया जा सके।)

जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ६६ में संशोधनः जम्मू और कश्मीर संवैधानिक अधिनियम १९९६ के अधिनियम १४ की धारा ६६ में "महामहिम के आदेश" की जगह "सदर-ए-रियासत" शब्द का इस्तेमाल किया गया। और जहां-जहां "महामहिम" शब्द दूसरी बार आये, वहां-वहां उसे हटा कर "सदर-ए-रियासत" शब्द का इस्तेमाल किया जायेगा। विधान सभा द्वारा सदर-ए-रियासत के रूप में चुने गये व्यक्ति के बारे में राज्य का प्रधानमंत्री भारत के

राष्ट्रपति को सूचित करेगा, ताकि उसे इसे पद पर स्थापित किया जा सके। जम्मू और कश्मीर राज्य क्षेत्र की सरकार से संबंधित सभी अधिकार, प्राधिकार और न्यायाधिकार का इस्तेमाल सदर-ए-रियासत द्वारा परिषद की सलाह पर किया जायेगा, उन स्थितियों को छोड़ कर जिनके बारे में इस अधिनियम के तहत ऐसा करने का निषेध होगा और उन विषयों को छोड़कर जो भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-एक में उल्लिखित हैं क्योंकि इन विषयों पर राज्य के लिए कानून बनाने की शक्ति भारतीय संसद के पास है। "महामहिम का विशेषाधिकार" की जगह "सदर-ए-रियासत के अधिकार" शब्द का इस्तेमाल किया जायेगा।

केवल अभिलिखित और स्वीकृत गतिविधियों पर ही ध्यान दें

भारत द्वारा शिकायत किये हुए छः साल से अधिक वक्त बीत गया था, लेकिन संयुक्त राष्ट्र को जम्मू और कश्मीर के हथियाए हुए क्षेत्रों से आक्रमणकारियों को भगाने में कामयाबी हासिल नहीं हो सकी थी।

यद्यपि, महाराजा द्वारा हस्ताक्षरित १९४७ के विलय के लेखपत्र के अनुसार, जम्मू और कश्मीर के लोगों द्वारा विलय के समर्थन की कोई जरूरत नहीं थी, लेकिन माउंटबेटन के २७ अक्टूबर १९४७ के पत्र से विवाद उत्पन्न हो गया, जो भारत विरोधी दलों के लिए लाभ की स्थिति थी, यद्यपि पाकिस्तान ने कभी भी किसी डोमिनियन में मिलने या न मिलने के महाराजा हरि सिंह देशी रियासत के युवराज के विशेष अधिकार के बारे में कभी कोई सवाल नहीं किया था। ६ फरवरी १९५४ को जम्मू और कश्मीर की निर्वाचित संविधान सभा (जो विधान सभा के तौर पर भी कार्य कर रही थी) ने जम्मू और कश्मीर के राजा द्वारा भारत के साथ २६ अक्टूबर १९४७ के विलय को सर्वसम्मति से अंगीकृत किया और इसमें पूर्ण विश्वास व्यक्त किया।

जम्मू और कश्मीर संविधान १९९६ (संशोधन) अधिनियम, २०११ संवत (१९५४ ईसवी) को सदर-ए-रियासत की ओर से १४ मई १९५४ को संशोधित किया गया। यह एक तरह से १४ मई १९५४ के प्रेसिडेंशियल कांस्टीट्यूशन (एप्लिकेशन टू जम्मू एंड कश्मीर) ऑर्डर १९५४ की पुष्टि था।

ऐसे कई कारण हैं जिन्हें जम्मू और कश्मीर के संविधान को अंतिम रूप देने में हुई देरी और भारतीय संविधान के धारा ३७० के जारी रहने जम्मू और कश्मीर के संविधान के भारतीय संविधान के साथ संगति में रहने से संबंधित विवाद का जिम्मेदार माना जा सकता है। कुछ लोग यह तर्क दे सकते हैं कि जिस तरह दिल्ली ने जम्मू और कश्मीर से जुड़े मामले में शेख मुहम्मद अब्दुल्ला की पसंद और नापसंद को अनावश्यक रूप से तरजीह दी और जम्मू और कश्मीर के महाराजा रीजेंट के अधिकारों की उपेक्षा की, वह इसके लिए जिम्मेदार था। लेकिन आइए केवल अभिलिखित (रिकॉर्डेड) स्वीकृत गतिविधियों पर ही ध्यान दें।

काफी चर्चा में रहे दिल्ली समझौते की कोई संवैधानिक वैधता नहीं थी क्योंकि यह केवल जवाहर लाल नेहरू और शेख अब्दुल्ला के बीच एक समझौता था। लेकिन चूंकि

इसके संदर्भ जम्मू और कश्मीर की संविधान सभा की कार्यवाहियों के दौरान और सदर-ए-रियासत व उनकी सरकार के मंत्रियों के आदेशोंध्पत्रों के जरिये दिखते रहे थे, ऐसे में नेशनल कांफ्रेंस या सगीर अहमद (साल २००६ में प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह द्वारा जम्मू और कश्मीर पर बनाये गये पांचवें कार्य समूह के अध्यक्ष) के द्वारा दिये गये उद्धरणों को दरकिनार नहीं किया जा सकता।

सदर-ए-रियासत के आधिकारिक रिकॉर्ड तो यहां तक इशारा देते हैं कि खुद शेख अब्दुल्ला भी १६५२ के तथाकथित दिल्ली समझौते को लागू करने के प्रति उत्साहित नहीं थे। शेख अब्दुल्ला के कैबिनेट के सहयोगियों द्वारा ८ अगस्त १६५३ को जम्मू और कश्मीर के प्रधानमंत्री को एक ज्वाइंट मेमोरेंडम दिया गया था जिसमें उन्होंने आरोप लगाया था कि- ७ अगस्त १६५३ को हुई कैबिनेट की बैठक के दौरान और पहले भी कई अवसरों पर, उन लोगों ने कुछ स्पष्ट प्रवृत्तियों की ओर ध्यान दिलाया है जो आम राय से काफी अलग रही है और व्यापक नीतियों के दौरान प्रत्यक्ष तरीके से जाहिर हुई हैं... मिस्टर बेग और वह, अपने सहयोगियों के विचार के विरुद्ध जा कर और उनसे परामर्श लिये बिना सार्वजनिक घोषणाएं करते हैं जो संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धांत के सरासर खिलाफ है... कि वह (शेख) राज्य के आंतरिक और बाहरी दोनों ही मामलों को संभालते समय अक्सर ही अपने सहयोगियों तक के विचार प्रकट करने के अधिकार के खिलाफ जाकर स्वेच्छाचारी तरीके अपनाते हैं.... हम बड़े ही खेद के साथ यह बताना चाहते हैं कि कैबिनेट में शेख अपने सहयोगियों की इच्छाओं को ही दरकिनार नहीं करते बल्कि विधान सभा में भी इस तरह से व्यवहार करते हैं जिससे वे लोग (उनके सहयोगी) अपनी जनता के प्रतिनिधि के तौर पर आधारभूत नीतियों के बारे में स्वतंत्र तरीके से अपने विचार रखने के अधिकार से वंचित हो जाते हैं..... सरकार का आधार बनाने वाली घोषित नीतियों को न मानते हुए उन्होंने लगातार ऐसी जिम्मेदारियों को स्वीकार करने से बचने की कोशिश की है जो राज्य के प्रधानमंत्री के तौर पर उनके जिम्मे आती हैं....शेख ने अक्सर इस तरीके से काम किया है जिससे राज्य के लोगों के मन में आम तौर पर और जम्मू व लद्दाख के लोगों के मन में खास तौर पर अनिश्चितता, संशय और भ्रम उत्पन्न हुआ है... और यहां तक कि जब लोगों की संयुक्त इच्छा भारत में कश्मीर के विलय के साथ थी, हमारा निवेदन स्वीकार करते समय भारत सरकार ने हमें आश्वासन दिया कि हमारी जनता को स्वनिर्णय का अधिकार दिया जायेगा... संविधान सभा के गठन के बाद दिल्ली समझौते, जिसके प्रमुख निर्माताओं में शेख भी थे, के तहत भारत के साथ राज्य के संबंधों के बारे में कुछ खास अपरिहार्य व्याख्याएं दी गईं, शेख के मत को सर्वसम्मति से सरकार,

नेशनल कांफ्रेंस, भारतीय संविधान और राज्य की संविधान सभा का समर्थन मिला, लेकिन न केवल उन्होंने जानबूझकर इन मामलों पर समझौतों को लागू करने में देरी की (जो उनकी नीति का अंतिम आश्रय बनी), बल्कि उद्देश्यपूर्ण तरीके से और खुले तरीके से सार्वजनिक तौर पर इन पर दोषारोपण किया... इन्होंने आरोप लगाया कि शेख ने इस तरह स्वेच्छाचारी तरीके से भारत के साथ राज्य के संबंधों में फूट डालने की हड़बड़ी दिखाई। ये बातें सब कुछ कहने के लिए पर्याप्त हैं। यह केवल नेतृत्व की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएं ही हैं जिन्होंने इन सालों के दौरान जम्मू और कश्मीर के मामले में दिक्कत पैदा की है। जो लोग प्रशासन पर अपनी नजर रखते हैं वे जम्मू और कश्मीर में माहौल को सच्चाई के साथ शांत नहीं होने देना चाहते।

(*शेख अब्दुल्ला के कैबिनेट के सदस्यों द्वारा ८ अगस्त १९५३ को शेख अब्दुल्ला को दिया गया ज्वाइंट मेमोरेंडम, एक प्रति सदर–ए–रियासत को, ८ अगस्त १९५३*) आपको याद होगा कि ७ अगस्त १९५३ को हुई कैबिनेट की बैठक के दौरान और पहले भी कई अवसरों पर, हमने कुछ स्पष्ट प्रवृत्तियों की ओर ध्यान दिलाया है जो आम राय से काफी अलग रही है और उन व्यापक नीतियों के दौरान प्रत्यक्ष तरीके से जाहिर हुई हैं जो सरकार और प्रशासन की आधार हैं। प्रशासन के संचालन के लिए एकसमान नीति के सामान्य व्यवहार के विरुद्ध, यह काफी अच्छी तरह से स्पष्ट हो गया है कि मिस्टर बेग और आप अपने सहयोगियों के विचार के विरुद्ध जा कर और उनसे परामर्श लिये बिना सार्वजनिक घोषणाएं करते हैं जो संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धांत के सरासर खिलाफ है। मौजूदा सरकार के गठन के समय से ही जनता द्वारा दिये गये जनादेश की संगति में आवश्यक नीतियों के निर्माण और पालन में आपके सहयोगियों द्वारा अधिकतम समझौतों की सुरक्षा के पालन की कोशिशों के बावजूद राज्य के आंतरिक और बाहरी दोनों ही मामलों को संभालते समय अक्सर ही आप अपने सहयोगियों तक के विचार प्रकट करने के अधिकार के खिलाफ जाकर स्वेच्छाचारी तरीके अपनाते हैं।

इनमें से अधिकांश उपाय और नीतियां अपने आप में विरोधाभासी और असंगत हैं जिनसे गंभीर जटिलताएं उत्पन्न हो रही हैं। विधान सभा के गठन के बाद हमने उम्मीद की थी कि एक कैबिनेट के तौर पर हमारा संयुक्त उत्तरदायित्व और सामूहिक क्रियाकलाप सुस्थापित संसदीय व्यवहार से नियमित होगा, लेकिन हम बड़े ही खेद के साथ यह बताना चाहते हैं कि कैबिनेट में आप अपने सहयोगियों की इच्छाओं को ही दरकिनार नहीं करते बल्कि विधान सभा में भी इस तरह से व्यवहार करते हैं जिससे जनता के प्रतिनिधि आधारभूत नीतियों के बारे में स्वतंत्र तरीके से अपने विचार रखने

के अधिकार से वंचित हो जाते हैं।

भूतकाल में, हालांकि कुछ ऐसे मौके आये जब हमारा उन तरीकों पर काफी संजीदा विरोध था जिनकी वजह से प्रशासन के कुशल व प्रभावी संचालन पर असर पड़ा, लेकिन सरकार के कामकाज में तालमेल और ऐक्य बनाये रखने के लिए हमने आपके विचारों के खिलाफ जाकर बातें रखने से परहेज किया। लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि सामंजस्य स्थापित करने की हमारी भावना का आपने गलत अर्थ लगाया और आपने लगातार एक ऐसा रवैया अपनाये रखा जो दूर-दूर तक लोकतांत्रिक नहीं है और सत्ता व पद के मनमाने इस्तेमाल की प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। सरकार की राजनीतिक और आर्थिक नीतियों के बारे में आपके रवैये ने लोगों के मन में काफी भ्रम पैदा किया है और जनता के एक बड़े वर्ग के आर्थिक जीवन को बिखेर दिया है। पिछले कुछ समय से कैबिनेट में एक गुटबाजी दिख रही है जिसकी वजह से प्रशासन के कार्यों में धीरे-धीरे अधःपतन आ रहा है। जनता की भलाई के लिए कैबिनेट के सदस्यों द्वारा प्रस्तावित विभिन्न सुधारात्मक उपायों को ईमानदारी से लागू नहीं किया गया है। इन सब बातों के अतिरिक्त, प्रशासन के रोजमर्रा के कामों में चौकसी बरतने और उचित प्रबंधन का अभाव दिखा है, जिसकी वजह से सरकारी कामकाज से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों में भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, अक्षमता और सार्वजनिक संसाधनों का अकारण दुरुपयोग जैसी स्थितियां उत्पन्न हुई हैं। भूलों और अधिकारों से जुड़े इन तथ्यों की वजह से राज्य के विभिन्न भागों में अपरिहार्य रूप से काफी बड़े स्तर पर असंतोष पैदा हुआ है।

कुल मिला कर सरकार में अपनी योजनाओं और कार्यक्रमों में एकरूपता और दिशा की कमी दिखी है। प्रशासन में अधःपतन की इस प्रक्रिया को रोकने की अनिवार्य जरूरत समय-समय पर हम आपके संज्ञान में लाते रहे हैं। हमने जनता के विभिन्न वर्गों की भावनाओं को पेश करने और इन दशाओं के सुधार के लिए तात्कालिक उपाय किये जाने की त्वरित आवश्यकता को रेखांकित करने की कोशिश की है। लेकिन खेद के साथ यह कहना पड़ रहा है कि इस मामले में आपने न केवल हमारे सभी विचारों को अनदेखा किया है, बल्कि वजीर समिति की सिफारिशों को भी, जिसका गठन सरकार द्वारा लोगों की शिकायतों की जांच करने के लिए किया गया था।

साथ ही साथ, राजनीतिक अनिश्चितता की वजह से हमारी अर्थव्यवस्था में गतिहीनता की स्थिति आ गई है जिसने जनता का एक बड़ा वर्ग दरिद्रता की ओर बढ़ गया है।

पिछले साल और इस साल जब पर्यटकों की संख्या में काफी सुधार दिखा, तब आपने गैरजिम्मेदाराना बयानों से लोगों का आत्मविश्वास खत्म कर दिया।

खास तौर पर पिछले कुछ महीनों की घटनाओं ने इस राज्य को गंभीर संकट में डाल दिया है। इस संकट के गंभीर और दूर तक असर करने वाले परिणाम होंगे। हमें यह कहते हुए खेद है कि सरकार के प्रमुख के तौर पर आप न केवल स्थितियों को समझने में असफल रहे हैं बल्कि अपने शब्दों व कार्यों के जरिए आपने तनाव को और भी जाहिर किया है। सरकार का आधार निर्मित करने वाली घोषित नीतियों को न मान कर आपने लगातार उन जिम्मेदारियों को स्वीकारने से हिचकिचाहट दिखाई है जो राज्य के प्राइम मिनिस्टर के तौर पर आप पर पड़ते हैं। आपने जिस तरह से काम किया है उससे राज्य के लोगों के मन में आम तौर पर और जम्मू और लद्दाख के लोगों के मन में खास तौर पर अनिश्चितता, शंका और संदेह उत्पन्न हुआ है।

संयुक्त तौर पर इन सभी कारकों ने दिक्कतें पैदा करने वाली उन ताकतों को मजबूत किया जो राज्य का विघटन चाहती हैं। जैसा कि सभी जानते हैं पाकिस्तान की ओर से अकारण आक्रामकता ने हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व को ही दांव पर लगा दिया है। संकट की इस मुश्किल घड़ी में, हम सभी ने संयुक्त रूप से मदद के लिए भारत से संपर्क किया और उससे अनुरोध किया कि वह राज्य का विलय स्वीकार करे व आक्रामकता का जवाब देने और राज्य में शांतिपूर्ण स्थिति बहाल करने में सहायता करे। लोगों की संयुक्त इच्छा भारत में कश्मीर के विलय के साथ थी। हमारा निवेदन स्वीकार करते समय भारत सरकार ने हमें आश्वासन दिया कि हमारी जनता को स्वनिर्णय का अधिकार दिया जायेगा। संविधान सभा के गठन के बाद दिल्ली समझौते, जिसके प्रमुख निर्माताओं में आप भी थे, के तहत भारत के साथ राज्य के संबंधों के बारे में कुछ खास अपरिहार्य व्याख्याएं दी गईं। आपके मत को सर्वसम्मति से सरकार, नेशनल कांफ्रेंस, भारतीय संविधान और राज्य की संविधान सभा का समर्थन मिला। लेकिन न केवल आपने जानबूझकर इन मामलों पर समझौतों को लागू करने में देरी की (जो आपकी नीति का अंतिम आश्रय बनी), बल्कि उद्देश्यपूर्ण तरीके से और खुले तरीके से सार्वजनिक तौर पर इन पर दोषारोपण किया। इस तरह आपने स्वेच्छाचारी तरीके से भारत के साथ राज्य के संबंधों में फूट डालने की हड़बड़ी दिखाई।

यद्यपि यह सत्य है कि राज्य के लोगों के पास अपने भविष्य के बारे में फैसला लेने का अंतिम अधिकार है, आपके द्वारा पैदा की गई अराजकता और भ्रम की दशा हमारे

अपने लोगों द्वारा स्वनिर्णय के अधिकार के इस्तेमाल के रास्ते में बाधक बन सकती है। इन परिस्थितियों में जो अपरिहार्य है वह यह कि नजरें गड़ाये बैठी विदेशी शक्तियां इसका फायदा उठा सकती हैं और अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए इस मौके का इस्तेमाल कर सकती हैं।

मिस्टर एम ए बेग ने लगातार संकीर्ण संप्रदायवाद की नीतियों का पालन किया है जिसने असल में राज्य की एकता को गंभीर खतरा पैदा किया है। दुर्भाग्यवश आपने कैबिनेट में उनकी नीतियों का और जनता के सामने उनकी गतिविधियों का समर्थन किया है। इसने राज्य की विभिन्न निर्वाचक इकाइयों के लोगों के मन में संदेह और शंका की कड़वी भावना उत्पन्न की है। आपने इस तरह की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं से आंखें मूंद रखी हैं और इस तरह अराजकता पैदा करने वाली शक्तियों को मजबूत और उत्साहित किया है। इसके नतीजतन राज्य के दो बुनियादी पहलुओं- एकता और धर्मनिरपेक्षता- को खतरा पहुंचा है।

हम लगातार आपसे अनुरोध करते रहे हैं कि इस तरह की प्रवृत्तियों पर रोक लगायें और लोगों के भरोसे की वापसी के लिए कदम उठायें। अपनी अच्छी नीयत के बावजूद हम अपनी कोशिशों में नाकामयाब रहे हैं।

ऐसे में काफी पीड़ा के साथ हम अपना यह निष्कर्ष आप तक पहुंचाना चाहते हैं कि जनता को एक स्वच्छ, सक्षम और स्वस्थ प्रशासन मुहैया कराने की क्षमता के लिहाज से कैबिनेट, जो अपने मौजूदा स्वरूप में अपनी नीयत और कामों के बीच एकता का प्रदर्शन नहीं कर पाई है, ने लोगों का विश्वास खो दिया है।)

जम्मू और कश्मीर की संविधान सभा एक निर्वाचित संस्था थी और युवराज कर्ण सिंह इसके रीजेंट महाराजा के प्रतिनिधि थे। साल १९५० से १९५४, १९५४ से १९५७ और १९५७ के बाद विलय के लेखपत्र से परे, जम्मू और कश्मीर के संविधान से संबंधित भारतीय संविधान के प्रावधानों से आगे बढ़ते हुए, भारत सरकार को सूचित की जाने वाली किसी भी गतिविधि/आदेश/अनुमोदन/ सहमति को वैधानिक और लोकतांत्रिक प्राधिकार का समर्थन हासिल था। जम्मू और कश्मीर की संविधान सभा असल में विधान सभा भी थी और ऐसे में १९५७ के बाद संविधान सभा के तौर पर तो इसका वजूद खत्म हो गया, लेकिन यह विधान सभा के रूप में बनी रही, जो २६ जनवरी १९५७ से लागू संविधान के प्रावधानों के तहत चुनी जानी थी।

अगर जम्मू और कश्मीर का संविधान वैधानिक है, तो इसके संशोधन अवैध कैसे?

जम्मू और कश्मीर का संविधान उस संविधान सभा द्वारा बनाया गया था जो राज्य के लोगों द्वारा चुनी गयी थी। जम्मू और कश्मीर के लोग भली-भांति जानते थे कि २६ अक्टूबर १९४७ को महाराजा ने राज्य का भारत के साथ विलय कर दिया है और जो संविधान बनाया जायेगा वह भारतीय डोमिनियन के दायरे के तहत होगा। लोगों ने उन उम्मीदवारों को मत दिया जो नेशनल कांफ्रेंस और कांग्रेस के द्वारा संयुक्त रूप से नेशनल कांफ्रेंस के झंडे के नीचे पेश किये गये थे। अगर महाराजा रीजेंट जम्मू और कश्मीर के युवराज भारत सरकार ने इतनी ईमानदारी नहीं दिखाई होती तो नेशनल कांफ्रेंस के लिए सभी ७५ सीटें जीतना संभव नहीं था (इस कड़वे सच के बावजूद कि शेख अब्दुल्ला को महाराजा हरि सिंह द्वारा अंतरिम सरकार का प्रधानमंत्री बनाया गया था, जो महाराजा को पसंद नहीं था)। इसी तरह, जैसा कि दावा किया जाता है, नेहरू और शेख के बीच का दिल्ली समझौता १९५० के बाद भारतीय संविधान की संगति में था और साथ ही साथ इसे जम्मू और कश्मीर के १९५७ के संविधान में शामिल किया गया था। यह वही संविधान है जिसके बारे में स्वायत्तता मांगने वालों द्वारा यह कहा गया कि नई दिल्ली ने अपने क्षेत्राधिकार से बाहर जाते हुए इसे खत्म कर दिया और इन लोगों ने जम्मू और कश्मीर की स्वायत्तता समिति की रिपोर्ट को स्वीकार करने वाले २५ जून २००० के संकल्प को लागू करने की मांग की।स्वायत्तता समिति की रिपोर्ट (१९९९) ने भारतीय संविधान के प्रावधानोंध धाराओं का जम्मू और कश्मीर के संविधान में अवैधानिक विस्तार अंगीकरण का कहीं भी उल्लेख तक नहीं किया है।

जम्मू और कश्मीर के लिए जितने भी प्रावधान विस्तारित किये गये हैं वह जम्मू और कश्मीर के संविधान भारतीय संविधान की धारा ३७० भारतीय संविधान के प्रावधानों के अधीन चलते हुए जम्मू और कश्मीर की सरकार की संगति मेंध सहमति के साथ किया गया है। ऐसे में अगर जम्मू और कश्मीर का संविधान एक निर्वाचित संविधान सभा द्वारा निर्मित और सदर-ए-रियासत द्वारा स्वीकृत एक वैधानिक दस्तावेज है तो भारतीय संविधान के किसी रूपांतरण संशोधन विस्तार (महाराजा द्वारा भारतीय डोमिनियन को समर्पित किये गये विषयों के दायरे से बाहर जाकर रूपांतरण (१९४७ के विलय के लेखपत्र की शर्तों के तहत), जबकि भारतीय संविधान का निर्माण होना अभी बाकी था) को कोई कैसे जम्मू और कश्मीर राज्य की स्वायत्तता के इरोजन का

नाम दे सकता है जो जम्मू और कश्मीर के संविधान (जम्मू व कश्मीर का संविधान, संवत १९९६ और जम्मू व कश्मीर का संविधान, १९५७ ईसवी) के प्रावधानों के तहत उसी संविधान सभा विधान सभा राज्य सरकार द्वारा स्वीकार किये गये हैं? यहां तक कि राज्य के प्रमुख के पदनाम के बारे में संशोधन (सदर-ए-रियासत से गवर्नर) और गवर्नर की नियुक्ति की प्रक्रिया के बारे में जो फैसला लिया गया है वह अकेले भारत सरकार द्वारा नहीं लिया गया है, बल्कि राज्य की विधान सभा द्वारा सर्वसम्मति से रूपांतरित संशोधित सम्मिलित किया गया है। साल १९७४ में कांग्रेस और शेख अब्दुल्ला के बीच एक समझौता हुआ और कांग्रेस ने विधान सभा में सदस्यों की संख्या के आधार पर शेख अब्दुल्ला को कांग्रेस-नीत सरकार के प्रमुख के रूप में चुना। शेख अब्दुल्ला ने तब तक नेशनल कांफ्रेंस को पुनर्जीवित नहीं किया जब तक कांग्रेस ने उनसे समर्थन वापस नहीं ले लिया (१९७७ के चुनाव)।

लेकिन उससे पहले शेख ने जम्मू और कश्मीर के लिए भारतीय संविधान के प्रावधानों के विस्तार को भी स्वीकार किया था जो न तो दबाव में आकर किया गया था और न ही जम्मू और कश्मीर के लोगों के हितों के खिलाफ था। इसमें कोई शक नहीं कि गवर्नर और चीफ मिनिस्टर के पदनाम से जुड़ी बातें सम्मिलित नहीं थी जिनकी वजह से जम्मू और कश्मीर के लोगों के हितों पर बुरा असर नहीं पड़ने वाला था। शायद ये चीजें दोषारोपण से बचने के उपायों के तौर पर की गयी थीं।

इसके बाद से जम्मू और कश्मीर में नियमित तौर पर चुनाव हुए हैं। जो भी सत्ता में आता है, वह चुनाव की प्रक्रिया को स्वच्छ बताता है और जो हार जाता है, वह दिल्ली पर दोष लगाने लगता है।

वोट की दौड़ में घाटी केंद्रित नेताओं की आंतरिक प्रतिस्पर्धा

बीते इतने सालों के दौरान विरोध के सुर कश्मीर घाटी (८६६६' वर्ग मील ६१५२'' वर्ग मील, जम्मू प्रांत के क्षेत्रफल (१४०१० वर्ग मील १०१४३.५ वर्ग मील) का ६१.६ फीसदी और लद्दाख के क्षेत्रफल (६३५५४ वर्ग मील ३७३०३ वर्ग मील) का १३.६ फीसदी) से मुखर हुए हैं। (१. महाराजा हरि सिंह की सरकार के १६४१ के प्रशासनिक रिपोर्ट के आधार पर प्रदर्शित आंकड़ा २. पाकिस्तान और चीन द्वारा हड़प लिये जाने की वजह से कम क्षेत्र)। यही नहीं, चूंकि सत्ता में रहे लोगों द्वारा कभी गंभीर प्रयास नहीं किये गये, ऐसे में विलय के बारे में भारत में, खास तौर पर कश्मीर घाटी में भ्रम और संदेह बढ़ा है क्योंकि दिल्ली ने भी केवल कश्मीर घाटी पर ध्यान केंद्रित किया है और चूंकि राजनीतिक सत्ता के केंद्र को केवल घाटी-केंद्रित बनाये रखा गया है, ऐसे में इतने सालों के बाद घाटी-आधारित नेता अपने आप को इस स्थिति में पा रहे हैं जहां दिल्ली पर यह आरोप लगाकर आसानी से वोट हासिल किये जा सकते हैं कि इसने इतने सालों के दौरान कश्मीरियों से बुरा व्यवहार किया है। इसके साथ ही साथ कश्मीर घाटी में अलगाववादी विचारधाराओं को भी बढ़ावा मिला है। वोट की दौड़ में राजनीतिक दलों (तथाकथित मुख्य धारा के दलों) को आंतरिक स्तर पर अब और अधिक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है और इन्होंने धर्म के नाम का इस्तेमाल करते हुए कश्मीर घाटी के बाहर की जगहों पर भी अपनी पहुंच बढ़ाने की कोशिश की है। पिछले कुछ समय में इन्हें कुछ सफलताएं भी हासिल हुई हैं और कुछ लोगों ने यह अंदाजा लगाना शुरू किया है कि कश्मीर घाटी के बाहर के मुस्लिम बहुल क्षेत्र, घाटी के साथ जाने को प्राथमिकता देंगे और ऐसे में जम्मू और कश्मीर की समस्या का हल भी काफी हद तक घाटी-केंद्रित ही रहने वाला है। हालांकि इस आकलन में बहुत दम नजर नहीं आता और घाटी-केंद्रित मांगों को वहां की समस्याओं को निबटा कर खत्म भी किया जा सकता है।

इसलिए विश्व समुदाय और भारत के लोगों तक यह संदेश पहुंचाने की जरूरत है कि जब जम्मू और कश्मीर के संविधान को उन लोगों द्वारा स्वीकार किया गया है जो जम्मू और कश्मीर की स्वायत्तता संविधान के खात्मे के स्वर मुखर करते हैं, तो उनके पास भारतीय संविधान के प्रावधानों को अस्वीकृत करने की ठोस वजह नहीं होती क्योंकि ये जम्मू और कश्मीर के उसी संविधान के प्रावधानों के तहत विधान सभाध राज्य सरकार की सहमति से जम्मू और कश्मीर द्वारा स्वीकार किये गये हैं। व्यक्तिगत स्तर पर किय गये वादों, दिये गये बयानों और व्यक्तिगत संबंधों को लिखित संविधान के ऊपर तवज्जो नहीं दिया जा सकता।

जस्टिस सगीर अहमद की रिपोर्ट अगंभीरता का प्रमाण

एक ऐसे समय में जबकि बहुत सारे संशय और प्रश्न अनुत्तरित हैं, स्थानीय कश्मीरी नेताओं के बीच कश्मीर घाटी के लोगों की अनंतिम एकता दिखाने की होड़ लगी हुई है। यहां तक कि मुख्य धारा के कश्मीरी नेताओं को भी दिल्ली पर आरोप लगाने में अधिक फायदा नजर आता है।

ऐसे में अलगाववादी विचारधाराओं के लोगों और भारत के साथ जम्मू व कश्मीर के विलय को खुले तौर पर चुनौती देने वाले लोगों के लिए आसानी हो गयी है। मुख्य धारा के नेता नहीं चाहते कि उनके अधिकार सत्ता में साझेदारी के मौके खत्म हों, इसलिए वे भारत के साथ १९४७ के जम्मू व कश्मीर के विलय पर सीधे-सीधे सवाल खड़े नहीं करते। नेशनल कांफ्रेंस, जिसने शेख अब्दुल्ला के समय से चले आ रहे श्रेणीक्रम से हासिल विरासत से प्राप्त अधिकारों की वजह से जम्मू व कश्मीर में अच्छी खासी पैठ बना रखी है, दिल्ली पर इस बात के आरोप लगाता है कि इसने भारतीय संविधान के जरिये जम्मू व कश्मीर को दी गई स्वायत्तता को खत्म कर दिया है। लेकिन नेशनल कांफ्रेंस यह काम स्वायत्तता की वापसी की मांगों के जरिए करता है, यह दल १९४७ के विलय की सत्यता पर उंगली नहीं उठाता। सत्ता हासिल करने की इच्छुक दूसरी क्षेत्रीय पार्टी पीडीपी को इसके लिए नेशनल कांफ्रेंस से दो-दो हाथ करने होते हैं। इसे नेशनल कांफ्रेंस से आगे निकलना है। लेकिन इसे इस बात का डर भी है कि कहीं इसे अलगाववादी न मान लिया जाये। बड़ी ही सावधानी से पीडीपी ने स्वशासन की बात की और २५ अक्टूबर २००८ को संकल्प पत्र पेश किया।

अतः, हालिया सालों के दौरान, आरटीसी, कार्य समूहों, वार्ताकारों और अध्ययन समूहों ने भी केवल कश्मीर घाटी पर ही ध्यान केंद्रित किया है। दिल्ली से आने वाला कोई भी आधिकारिक समूह अलगाववादी तत्वों से मिलने को इच्छुक होता है जो कोई रुचि नहीं दिखाते। दूसरी ओर जो लोग जम्मू क्षेत्र से संबंधित हैं उनमें ये समूह वार्ताकार रुचि नहीं दिखाते (शायद काम शुरू करने से पहले जो बातें उन्हें बताई जाती होंगी, उनके लिहाज से यह नजरिया जरूरी हो)। श्रीनगर में दूसरी बहुदलीय आरटीसी के बाद २५ मई २००६ को भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने जम्मू व कश्मीर पर पांच कार्य समूहों को नियुक्त किया था। भारतीय प्रधानमंत्री द्वारा नई दिल्ली में क्रमशः २५ फरवरी २००६ और २५ अप्रैल २००७ को पहली और तीसरी आरटीसी कराई

गई थी। एक कार्य समूह (केंद्र और राज्य के बीच संबंधों को मजबूत करने के लिए पांचवां कार्य समूह) की अध्यक्षता जस्टिस एस सगीर अहमद (जम्मू व कश्मीर उच्च न्यायालय और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश व उच्चतम न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश) के हाथों में थी। १२ दिसंबर २००६ को कार्य समूह की पहली बैठक में इसके अध्यक्ष ने स्पष्ट कर दिया कि जम्मू व कश्मीर राज्य के ऊपर भारत और पाकिस्तान के विवाद से कार्य समूह को कोई मतलब नहीं है और यह कार्य समूह भारतीय संविधानों के ढांचे के अधीन रहते हुए केंद्र-राज्य संबंध से जुड़े सवालों पर विचार करने तक स्वयं को सीमित रखेगा। ऐसे में कार्य समूह के सामने विचार के लिए स्वायत्तता (नेशनल कांफ्रेंस की मांग), स्वशासन (पीडीपी की मांग) और धारा ३७० जैसी मांगें थीं। कार्य समूह की रिपोर्ट पर इसके अध्यक्ष ने १८ दिसंबर २००६ को हस्ताक्षर किया और २३ दिसंबर २००६ को समूह के सचिव अजीत कुमार ने जम्मू व कश्मीर के चीफ मिनिस्टर उमर अब्दुल्ला को जम्मू में यह रिपोर्ट दी।

आश्चर्यजनक रूप से कार्य समूह की रिपोर्ट ने स्वायत्तता की मांग जून २००० के जम्मू और कश्मीर विधान सभा के स्वायत्तता के प्रस्ताव को रत्ती भर भी नहीं नकारा। रिपोर्ट में कहा गया- (i) भारतीय संविधान का धारा ३७०- साठ साल पुराने इस मामले को हमेशा के लिए निबटा देना चाहिए। रिपोर्ट के पृष्ठ १० के अनुच्छेद ३ में संपत प्रकाश के उच्चतम न्यायालय के एक मामले का संदर्भ दिया गया है जो कार्य समूह के सामने एम एच बेग के जरिये पीडीपी द्वारा पेश किया गया था। लेकिन इसके बाद भी रिपोर्ट में धारा ३७० के बारे में लापरवाही भरी टिप्पणी की गयी है। (ii) रिपोर्ट के सुझावों में कहा गया है कि स्वायत्तता की मांग की जांच कश्मीर समझौते के मद्देनजर या किसी अन्य तरीके से या उस तरीके से की जानी चाहिए जो प्रधानमंत्री को उचित व अनुरूप लगे ताकि जहां तक संभव हो सके स्वायत्तता की बहाली की जा सके। यहां सवाल यह है कि अध्यक्ष ने स्वयं अपने स्तर से इसकी जांच क्यों नहीं की और इसके बारे में अपने विशिष्ट सुझाव क्यों नहीं दिये?

तीन साल खर्च करने के बाद भी उन्होंने मुद्दे को जस का तस छोड़ दिया। (iii) जहां तक पीडीपी की ओर से किये गये स्वशासन की मांग का सवाल है, रिपोर्ट के सुझावों में अनुच्छेद ३ में कहा गया है कि पीडीपी की तरफ से मिस्टर बेग ने मौखिक तौर पर स्वशासन के विचार की व्याख्या की, लेकिन पीडीपी द्वारा प्रस्तावित स्वशासन पर विस्तार में विचार नहीं किया जा सका क्योंकि स्वशासन के विभिन्न पहलुओं से

संबंधित दस्तावेज पीडीपी ने कार्य समूह को नहीं दिये, हालांकि पीडीपी ने यह दस्तावेज देने का वादा किया था। उस समय तक पीडीपी ने स्वशासन से संबंधित अपना संकल्प पत्र २५ अक्टूबर २००८ को श्रीनगर में जारी कर दिया था और इसे अपनी वेबसाइट पर भी लगा दिया था। सवाल यह है कि फिर भी कार्य समूह ने क्यों स्वशासन की मांग को दरकिनार नहीं किया? ऐसा करने के बजाय कार्य समूह ने कहा कि जब पीडीपी अपने दस्तावेज के साथ प्रस्तुत हो तो स्वशासन के मुद्दे पर केंद्र सरकार द्वारा विचार किये जाने की जरूरत है। पीडीपी द्वारा जारी किये गये दस्तावेज में ऐसी कई सारी बातें हैं जो १६४७ के विलय भारत-पाकिस्तान संबंध पाक अधिकृत कश्मीर से संबंधित हैं। रिपोर्ट में समूह के कार्य के दायरे के भीतर रहते हुए या भारतीय संविधान के अधीन रहते हुए या अन्य किसी आधार का इस्तेमाल करते हुए इस मांग के बारे में टिप्पणी की जानी चाहिए थी। लेकिन कार्य समूह ने इस बारे में लापरवाही भरा नजरिया अपनाया। जस्टिस सगीर अहमद की रिपोर्ट इस बात का सर्वोत्तम नमूना है कि किस तरह से उच्च स्तरों पर जम्मू व कश्मीर के मामले के प्रति अगंभीर नजरिया अपनाया गया है।

आश्चर्यजनक रूप से जस्टिस सगीर अहमद द्वारा पेश की गई पांचवें कार्य समूह की रिपोर्ट ने पीडीपी के स्वशासन संबंधी संकल्प पत्र का कोई संदर्भ नहीं दिया और न ही पीडीपी ने पांचवें कार्य समूह की इस रिपोर्ट पर कोई सवाल ही खड़ा किया जिसमें यह दावा किया गया था कि उसे इस बारे में कोई जानकारी नहीं है कि पीडीपी का स्वशासन संबंधी संकल्प पत्र पहले ही तैयार हो गया था।

भारत का अनिवार्य अंग है जम्मू–कश्मीर तो पीडीपी के स्वशासन के लिए जगह कहां?

पीडीपी का स्वशासन संबंधी दस्तावेज (i) पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (पीओके) को पाकिस्तान प्रशासित कश्मीर (पीएके) कहता है, (ii) स्वशासन संबंधी दस्तावेज की सलाह है कि जम्मू व कश्मीर के मुद्दे को अंतरराज्य स्तर पर किये गये विशिष्ट पहलों के जरिए नहीं सुलझाया जा सकता, (iii) यह दस्तावेज एक दोहरी मुद्रा की नयी व्यवस्था की स्थापना की सलाह देता है जहां जीजेएके के अधीन भौगोलिक क्षेत्रों में भारतीय और पाकिस्तानी दोनों रुपयों का वैधिक चलन हो, (iv) यह कहता है कि स्वशासन का मतलब है भारत राष्ट्र से स्वायत्तता, जबकि स्वायत्तता (नेशनल कांफ्रेंस के हिसाब से स्वायत्तता) का अर्थ है भारत सरकार से तुलनात्मक स्वायत्तता, (v) दस्तावेज की सलाह है कि वृहद जम्मू और कश्मीर की दो इकाइयां स्वतंत्र तौर पर भारत, पाकिस्तान और दुनिया के अन्य देशों के साथ व्यापार करें। इस तरह से जम्मू और कश्मीर की पीडीपी, पूर्व केंद्रीय गृह मंत्री मुफ्ती मुहम्मद सईद की अध्यक्षता वाली, ने स्वशासन संबंधी अपने संकल्प पत्र में जम्मू और कश्मीर के कुछ मामलों पर भारत व पाकिस्तान के संयुक्त नियंत्रण जैसी बातें कही हैं, यह जानते हुए भी कि भारत के साथ १९४७ के विलय को समाप्त किये बिना ऐसा संभव नहीं है। विलय के विपरीत तरीकों की वकालत करते हुए एक 'मुख्य धारा' के भारतीय दल के बहाने इसने नेशनल कांफ्रेंस के ऊपर बढ़त पाने की कोशिश की है।

स्वशासन संबंधी संकल्प पत्र में पीडीपी के एमएलए निजामुद्दीन भट्ट ने एक नई बात जोड़ी है। पीडीपी एमएलए की गुजारिश, जिसे १५ सितंबर २०११ को जम्मू व कश्मीर की विधान सभा के स्पीकर मोहम्मद अकबर लोन ने खारिज कर दिया, यह थी कि जम्मू व कश्मीर के संविधान के (i) सेक्शन-१४७ (बी) (ii) सेक्शन-३ और (iii) सेक्शन-५ का विलोपनध संशोधन कर दिया जाये। सेक्शन-३ में भारतीय संघ के साथ जम्मू व कश्मीर के संबंध को परिभाषित किया गया है। यह सेक्शन कहता है, कि "जम्मू व कश्मीर राज्य भारतीय संघ का अविभाज्य अंग है और रहेगा"। यह बात स्पीकर द्वारा खारिज होनी ही थी (पीडीपी के एमएलए को भी अच्छी तरह से यह बात पता थी) क्योंकि जम्मू व कश्मीर के संविधान का सेक्शन-१४७ यह कहता है कि सेक्शन-१४७, सेक्शन-३ और सेक्शन-५ के प्रावधानों में किसी भी तरह के बदलाव के लिए कोई भी विधेयक या कोई भी संशोधन विधान सभा के किसी भी सदन में नहीं लाया जा सकता।

ऐसे में यह लगता है कि पीडीपी एमएलए की इस हरकत का उद्देश्य यह सांकेतिक संदेश देना है कि वह जम्मू व कश्मीर के भारत के अधीन रहने में विश्वास नहीं करते।

भारतीय संविधान की धारा-१ में भारत के क्षेत्रों की व्याख्या की गई है, जो भारत है और जम्मू व कश्मीर राज्य भारत के क्षेत्र के अधीन है। इसी तरह, कोई भी व्यक्ति जो भारत का नागरिक है, वह जम्मू व कश्मीर का स्थायी निवासी ही हो सकता है। सबसे पहले किसी को भारत का नागरिक होना होता है, उसके बाद ही वह जम्मू व कश्मीर का पीआरसी राज्य की प्रजा हो सकता है। जम्मू व कश्मीर के संविधान के सेक्शन-६ में साफ-साफ कहा गया है कि (स) प्रत्येक व्यक्ति जो भारतीय संविधान के प्रावधानों के तहत भारत का नागरिक है या होना चाहता है, उसे १४ मई १९५४ को राज्य का स्थायी निवासी होना चाहिए। (ए) वह श्रेणी एक या श्रेणी दो की राज्य प्रजा हो, या (बी) कानून के तहत राज्य में अचल संपत्ति हासिल की हो.......

अतः, कोई भी व्यक्ति जो भारत की अपनी नागरिकता को खो देता है, वह इसके साथ ही साथ जम्मू व कश्मीर के स्थायी निवासी के तौर पर भी अपने अधिकार को खो देता है। इस बात को गहराई से समझने की जरूरत है।

अतः, स्वशासन जैसी मांगों को लिए न तो भारत के संविधान के दायरे के तहत और न ही जम्मू व कश्मीर के संविधान के अधीन कोई जगह है और ऐसे में दिल्ली द्वारा वक्त न गंवाते हुए इस बारे में अपना पक्ष पीडीपी के स्वशासन के वकालत करने वाले लोगों के सामने स्पष्ट कर देना चाहिए अन्यथा आम आदमी को आगे भी भ्रमित किया जाता रहेगा।

{संघ का नाम और राज्यक्षेत्र। नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना। नए राज्यों का निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन। १. (१) भारत, अर्थात इंडिया, राज्यों का संघ होगा।

१[(२) राज्य और उनके राज्यक्षेत्र वे होंगे जो पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं।] (३) भारत के राज्यक्षेत्र में,

(क) राज्यों के राज्यक्षेत्र, २[(ख) पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट संघ राज्यक्षेत्र, और (ग) ऐसे अन्य राज्यक्षेत्र जो अर्जित किए जाएँ, समाविष्ट होंगे।]

अतः, भारत का कोई अन्य नागरिक इस बात का अधिकारी नहीं है कि वह भारत की अखंडता को हानि पहुंचाए।

{जम्मू व कश्मीर के संविधान के सेक्शन-६ में साफ-साफ कहा गया है कि (स) प्रत्येक व्यक्ति जो भारतीय संविधान के प्रावधानों के तहत भारत का नागरिक है या होना चाहता है, उसे १४ मई १९५४ को राज्य का स्थायी निवासी होना चाहिए। (ए) वह

श्रेणी एक या श्रेणी दो की राज्य प्रजा हो, या (बी) कानून के तहत राज्य में अचल संपत्ति हासिल की हो, इस तिथि से कम से कम दस साल पहले से वह राज्य का सामान्य निवासी रहा हो। (२) कोई भी व्यक्ति जो, १४ मई १६५४ से पहले श्रेणी एक या श्रेणी दो की राज्य प्रजा रहा हो, एक मार्च १६४७ के बाद उस क्षेत्र में चला गया हो, जो अब पाकिस्तान में है, पुनर्वास की अनुमति के तहत राज्य में वापस आया हो या राज्य विधान सभा द्वारा बनाये गये किसी कानून के तहत स्थायी तौर वापस आया हो, ऐसी वापसी के बाद राज्य का स्थायी निवासी होगा। (३) इस खंड में 'श्रेणी एक या श्रेणी दो की राज्य प्रजा' का तात्पर्य वही है जो २० अप्रैल की राज्य अधिसूचना संख्या आई-एल ८४ में है, इसे २७ जून १६३२ के राज्य अधिसूचना संख्या १३ एल के साथ पढ़ें।

धारा-२- संसद, विधि द्वारा, ऐसे निबंधनों और शर्तों पर, जो वह ठीक समझे, संघ में नए राज्यों का प्रवेश या उनकी स्थापना कर सकेगी।
धारा-३- संसद, विधि द्वारा- (क) किसी राज्य में से उसका राज्यक्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी राज्यक्षेत्र को किसी राज्य के भाग के साथ मिलाकर नए राज्य का निर्माण कर सकेगी (ख) किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ा सकेगी (ग) किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी (घ) किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगी (ङ) किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी [परंतु इस प्रयोजन के लिए कोई विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना और जहाँ विधेयक में अंतर्विष्ट प्रस्थापना का प्रभाव राज्यों में से किसी के क्षेत्र, सीमाओं या नाम पर पड़ता है वहाँ जब तक उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा उस पर अपने विचार, ऐसी अवधि के भीतर जो निर्देश में विनिर्दिष्ट की जाए या ऐसी अतिरिक्त अवधि के भीतर जो राष्ट्रपति द्वारा अनुज्ञात की जाए, प्रकट किए जाने के लिए वह विधेयक राष्ट्रपति द्वारा उसे निर्देशित नहीं कर दिया गया है और इस प्रकार विनिर्दिष्ट या अनुज्ञात अवधि समाप्त नहीं हो गई है, संसद के किसी सदन में पुनःस्थापित नहीं किया जाएगा।]

भारतीय संविधान की धारा ३७० अस्थायी है

आसान शब्दों में कहा जाये तो आम आदमी का यह मानना है कि जम्मू व कश्मीर राज्य का एक अलग संविधान है। लेकिन इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि इस संदर्भ में 'अलग' संविधान भारतीय संविधान द्वारा ही दिया गया है।

भारतीय संविधान और जम्मू व कश्मीर राज्य अक्सर ही बहस और वाद-विवाद के मुद्दे बनते रहे हैं। कुछ लोगों ने धारा ३७० को पूरे विवाद की जड़ माना है, कुछ का कहना है कि अब धारा ३७० का कोई खास महत्व नहीं है क्योंकि इसी धारा के मार्फत भारतीय संविधान के कई प्रावधान, भारतीय संसद के कई कानूनों अधिनियमों ने जम्मू व कश्मीर तक अपनी पहुंच बनाई है। जम्मू व कश्मीर के संविधान के हिस्से के तौर पर जगह पाई है या जम्मू व कश्मीर के संविधान के कुछ प्रतिबंधात्मक प्रावधान अब काफी हद तक भारतीय संविधान की सुसंगति में हैं, ऐसे में धारा ३७० पर चलने वाली बहस अब बंद हो जानी चाहिए। बल्कि जिन लोगों ने ये प्रावधान बनाये और १९४७/१९५० के दशक में विवादित प्रतिबद्धताएं कीं, उनसे सवाल किये जाने चाहिए थे या उनके 'उत्तराधिकारियों' को जिम्मेदारी स्वीकार करने के लिए कहा जाना चाहिए।

यह सही नहीं होगा कि सवाल पूछ कर उन्हें खारिज कर दिया जाये जिनके लिए ये प्रावधान बनाये गये हैं और अगर लाभार्थी फिर भी धारा ३७० के साथ रहना चाहते हैं, तो उन्हें अपने विशेष अधिकार छोड़ने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, बल्कि उन्हें सामाजिक-राजनीतिक तौर पर इस बात के लिए तैयार करना होगा कि वे विशेष प्रावधानों के दौर से बाहर निकलें। इन्हें विश्वास में लेते हुए ऐसे प्रावधानों की कमियों के बारे में बताना होगा और ऐसा लोकतांत्रिक तरीके से करना होगा।

लेकिन मौजूदा वक्त में यह एक कड़वा सच है कि भारत के साथ जम्मू व कश्मीर के संवैधानिक संबंध की शैली ने भी उन लोगों को काफी मसाला उपलब्ध कराया है जो जम्मू व कश्मीर के भारत में रहने के खिलाफ हैं या जो जम्मू व कश्मीर पर संवैधानिक सवाल खड़े करते रहते हैं। वक्त बीतने के साथ भारत की नीयत पर सवाल खड़ा करने वाले लोगों की संख्या बढ़ती गयी है जो जम्मू व कश्मीर की शांति के लिए काफी हानिकारक है। ऐसा लगता है कि दिल्ली ने पिछले साठ सालों में इन मुद्दों को ईमानदारी के साथ सुलझाने की कोशिश नहीं की है, १९९० के बाद भी नहीं।
यहां तक कि जम्मू व कश्मीर के वे राजनेता, जो भारत के साथ जम्मू व कश्मीर के

१९४७ के विलय की बात (इसमें कोई शक नहीं कि कुछ लोग अभी भी इस बात को मानते हैं कि जम्मू व कश्मीर को अपना संविधान और अपना ध्वज बनाये रखना चाहिए) को स्वीकृति देते हैं, भारत पर आरोप लगाते हैं कि वह भारतीय संविधान के कुछ प्रावधानों को अनावश्यक तौर पर जम्मू व कश्मीर पर थोपता है और यह मांग करते हैं कि जिन कानूनों को १९५७ के पहले या उसके बाद जम्मू व कश्मीर पर थोपा गया है उन्हें वापस लिया जाना चाहिए।

इनमें से कई लोग जम्मू व कश्मीर में सरकारों में शामिल रहे हैं और उन्होंने व उनके दलों ने धारा ३७० के प्रावधानों के तहत जम्मू व कश्मीर की विधान सभा के भीतर व बाहर उन धाराओं अधिनियमों प्रावधानों के विस्तारण अंगीकरण के लिए संवैधानिक तरीके से सहमति दी है जिन्हें आज विवाद का विषय बनाया जा रहा है। इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि जिस तरीके से इन लोगों ने भारत द्वारा जम्मू व कश्मीर की स्वायत्तता के खात्मे और 'कश्मीरियों' द्वारा भारत पर किए गए विश्वास को तोड़ने का आरोप भारत पर लगाया है, उसका फायदा उन लोगों को हुआ है जो भारत के साथ जम्मू व कश्मीर के अक्टूबर १९४७ के विलय की सत्यता पर सवाल खड़े करते हैं। अगर ऐसा नहीं हुआ होता तो १९४७ के विलय को चुनौती देने, सत्ता में बैठे लोगों से बात करने के प्रस्ताव को ठुकराने, घाटी के साथ-साथ घाटी के बाहर भी सेमिनार, रैली और प्रेस कांफ्रेंस में भारत विरोधी विचारों की धड़ल्ले और आजादी के साथ अभिव्यक्ति करने के बावजूद अलगाववादी दिल्ली की प्राथमिकता की सूची में नहीं आते।

भारतीय संविधान की धारा ३७० जम्मू व कश्मीर के लिए विशेष स्थिति का प्रावधान नहीं है, बल्कि यह जम्मू व कश्मीर राज्य के लिए एक अस्थायी प्रावधान है। यह धारा अस्थायी है और इसका खात्मा होना है। अस्थायी शब्द बड़ी ही आसान भाषा में इस बात का संकेत देता है कि जिन लोगों ने भारतीय संविधान का मसौदा बनाया और उसे अंगीकृत किया, उन्होंने यह प्रावधान इस उम्मीद में बनाया कि राज्य से संबंधित अनिश्चितता बातचीत जल्दी ही खत्म हो जायेगी। धारा ३७० (३) से भी कुछ इसी तरह का संदेश निकल कर आता है, जिसमें कहा गया है कि- इस अनुच्छेद के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति लोक अधिसूचना द्वारा घोषणा कर सकेगा कि यह अनुच्छेद प्रवर्तन में नहीं रहेगा या ऐसे अपवादों और उपांतरणों सहित ही और ऐसी तारीख से, प्रवर्तन में रहेगा, जो वह विनिर्दिष्ट करे :
परंतु राष्ट्रपति द्वारा ऐसी अधिसूचना निकाले जाने से पहले खंड (२) में निर्दिष्ट उस

राज्य की संविधान सभा की सिफारिश आवश्यक होगी।

किसी भी संविधान सभा को स्थायी रूप से नहीं रहना होता, अतः यहां पर संविधान सभा शब्द का इस्तेमाल इस बात का संकेत देता है कि धारा ३७० काफी कम समय के लिए बनाया गया था। कुछ लोग यह तर्क देते हैं कि धारा ३७० को निरस्त नहीं किया जा सकता क्योंकि अब संविधान सभा नहीं है। वाद विवाद के लिहाज से इस तर्क को दरकिनार किया जा सकता है क्योंकि जम्मू व कश्मीर की संविधान सभा को जम्मू व कश्मीर का संविधान, १९९६, संवत २००८ में संशोधित, के तहत विधान सभा का भी नाम दिया गया था (इस पर पिछले अध्यायों में चर्चा हो चुकी है)। अतः अगर जरूरत पड़ती है तो विधान सभा इस कार्य को कर सकती है। भारतीय संविधान की धारा ३६८ में उन प्रक्रियाओं का वर्णन है जिनके जरिए संविधान का संशोधन किया जा सकता है, शायद इनसे कुछ मदद मिले।

शुरुआती सालों में भारत के अन्य राज्यों के लोगों ने भी जम्मू व कश्मीर के मामलों को बहुत तवज्जो नहीं दी। अब केवल तकनीकी बातों को स्पष्ट करने से आम आदमी के दिमाग में बैठे भ्रम को खत्म करना आसान नहीं होगा, खास तौर पर कश्मीर घाटी के लोगों के।

दिल्ली की नीयत से जुड़े तथ्यों और सच्चाई को आम आदमी तक पहुंचाना होगा तभी उन वजहों को खत्म किया जा सकता है जिनका इस्तेमाल अलगाववादियों ने बीते सालों में किया है। इससे उन धारणाओं को खत्म करने में भी मदद मिलेगी जो 'मुख्य धारा' के कुछ भारतीय नेताओं (जो मानते हैं कि जम्मू व कश्मीर अन्य भारतीय राज्यों से अलग है) ने स्थापित किया है।

इसी तरह, १४ मई १९५४ का संविधान (जम्मू व कश्मीर के लिए) का राष्ट्रपति आदेश भी जम्मू व कश्मीर के संविधान की बुनियाद के तौर पर देखा जा सकता है। ऐसे में कोई कह सकता है कि क्यों कोई भारतीय, जो जम्मू व कश्मीर की प्रजा है, अपने विशेष अधिकार समर्पित कर देगा जो भारतीय संविधान की ओर से उसे हासिल हुए हैं? जब ऐसे लोग, जो धारा ३७० को बनाये रखने या जम्मू व कश्मीर के अलग संविधान के पक्षधर नहीं हैं, इन पहलुओं पर गंभीरता से विचार करते हैं तो शायद वे जम्मू व कश्मीर के उन भारतीयों को प्रेरित करने में सफल हो जायें जो अपने विशेष प्रावधानों की समाप्ति के लिए तैयार नहीं हैं। निश्चित तौर पर धारा ३७० का एक

नुकसान है और वह यह है कि कुछ लोग भोले भाले लोगों को भारत से दूर करने के लिए धारा ३७० का इस्तेमाल अलगाववाद के प्रतीक के तौर पर करते हैं।

अन्यथा यह उनके भी पूरे हित में होगा जो ऐसे लोगों को शांत कराना चाहते हैं जो अलग ध्वज और अलग संविधान के नाम पर अलगाववादियों को बढ़ावा देते रहे हैं और दे रहे हैं।

{भारतीय संविधान का भाग २१- जम्मू व कश्मीर राज्य के संबंध में अस्थायी उपबंध- धारा ३७०-

(१) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी,-

(क) धारा २३८ के उपबंध जम्मू व कश्मीर राज्य के संबंध में लागू नहीं होंगे (ख) उक्त राज्य के लिए विधि बनाने की संसद की शक्ति- (i) संघ सूची और समवर्ती सूची के उन विषयों तक सीमित होगी जिनको राष्ट्रपति, उस राज्य की सरकार से परामर्श करके, उन विषयों के तत्स्थानी विषय घोषित कर दे जो भारत डोमिनियन में उस राज्य के अधिमिलन को शासित करने वाले अधिमिलन पत्र में ऐसे विषयों के रूप में विनिर्दिष्ट हैं जिनके संबंध में डोमिनियन विधान मंडल उस राज्य के लिए विधि बना सकता है और (ii) उक्त सूचियों के उन अन्य विषयों तक सीमित होगी जो राष्ट्रपति, उस राज्य की सरकार की सहमति से, आदेश द्वारा, विनिर्दिष्ट करे।

स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, उस राज्य की सरकार से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जिसे राष्ट्रपति से, जम्मू-कश्मीर के महाराजा की ५ मार्च, १९४८ की उद्घोरषणा के अधीन तत्समय पदस्थ मंत्रि-परिषद की सलाह पर कार्य करने वाले जम्मू-कश्मीर के महाराजा के रूप में तत्समय मान्यता प्राप्त थी।

(ग) धारा १ और इस धारा के उपबंध उस राज्य के संबंध में लागू होंग

(घ) इस संविधान के ऐसे अन्य उपबंध ऐसे अपवादों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए, जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे, उस राज्य के संबंध में लागू होंगेरू परंतु ऐसा कोई आदेश जो उपखंड (ख) के पैरा (i) में निर्दिष्ट राज्य के अधिमिलन पत्र में विनिर्दिष्ट विषयों से संबंधित है, उस राज्य की सरकार से परामर्श करके ही किया जाएगा, अन्यथा नहींरू परंतु यह और कि ऐसा कोई आदेश जो अंतिम पूर्ववर्ती परंतुक में निर्दिष्ट विषयों से भिन्न विषयों से संबंधित है, उस सरकार की सहमति से ही किया जाएगा, अन्यथा नहीं। (२) यदि खंड (१) के उपखंड (ख) के पैरा (i) में या उस खंड के उपखंड (घ) के दूसरे परंतुक में निर्दिष्ट उस राज्य की सरकार की सहमति, उस राज्य का संविधान बनाने के प्रयोजन के लिए संविधान सभा के बुलाए जाने से पहले दी जाए तो उसे ऐसी संविधान सभा के समक्ष ऐसे विनिश्चय के लिए रखा जाएगा जो वह उस पर करे। (३) इस धारा के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी,

राष्ट्रपति लोक अधिसूचना द्वारा घोषणा कर सकेगा कि यह धारा प्रवर्तन में नहीं रहेगी या ऐसे अपवादों और उपांतरणों सहित ही और ऐसी तारीख से, प्रवर्तन में रहेगा, जो वह विनिर्दिष्ट करेरू परंतु राष्ट्रपति द्वारा ऐसी अधिसूचना निकाले जाने से पहले खंड (२) में निर्दिष्ट उस राज्य की संविधान सभा की सिफारिश आवश्यक होगी।

संविधान का संशोधन ३६८ : संविधान का संशोधन करने की संसद की शक्ति और उसके लिए प्रक्रिया- ख (१) इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी, संसद अपनी संविधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए इस संविधान के किसी उपबंध का परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन के रूप में संशोधन इस धारा में अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार कर सकेगी।, ख(२), इस संविधान के संशोधन का आरंभ संसद के किसी सदन में इस प्रयोजन के लिए विधेयक पुरःस्थापित करके ही किया जा सकेगा और जब वह विधेयक प्रत्येक सदन में उस सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उस सदन के उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा पारित कर दिया जाता है तब वह राष्ट्रपति के सम्मुख पेश किया जायेगा जो विधेयक को अपनी अनुमति देगा और तब संविधान उस विधेयक के निबंधनों के अनुसार संशोधित हो जायेगा। परंतु यदि ऐसा संशोधन- (क) धारा ५४, धारा ५५, धारा ७३, धारा १६२ या धारा २४१ में, या (ख) भाग ५ के अध्याय ४, भाग ६ के अध्याय ५ या भाग ११ के अध्याय १ में, या (ग) सातवीं अनुसूची की किसी सूची में, या (घ) संसद में राज्यों के प्रतिनिधित्व में, या (च) इस धारा के उपबंधों में, कोई परिवर्तन करने के लिए है तो ऐसे संशोधन के लिए उपबंध करने वाला विधेयक राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति के लिए प्रस्तुत किये जाने से पहले उस संशोधन के लिए कम से कम आधे राज्यों के विधान मंडलों द्वारा पारित इस आशय के संकल्पों द्वारा उन विधान मंडलों का अनुसमर्थन भी अपेक्षित होगा। (३) धारा १३ की कोई बात इस धारा के अधीन किए गए किसी संशोधन को लागू नहीं होगी। [(४) इस संविधान का (जिसके अंतर्गत भाग ३ के उपबंध हैं) इस अनुच्छेद के अधीन]संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, १९७६ की धारा ५५ के प्रारंभ से पहले या उसके पश्चात, किया गया या किया गया तात्पर्यित कोई संशोधन किसी न्यायालय में किसी आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जायेगा। (५) शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि इस धारा के अधीन इस संविधान के उपबंधों का परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन के रूप में संशोधन करने के लिए संसद की संविधायी शक्ति पर किसी प्रकार का निर्बन्धन नहीं होगा।,}

विशेष राज्य सूची के तौर पर देखा जा सकता है जम्मू—कश्मीर का संविधान

ऐसा कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान (१९५०) में अन्य भारतीय राज्यों से संबंधित विषयों को धारा २४६ के तहत संघ सूची, समवर्ती सूची और राज्य सूची में रखा गया, जबकि जम्मू व कश्मीर राज्य के लिए व्याख्या के लिहाज से धारा ३७० में राज्य सूची और संघ सूची को अलग-अलग करके दिखाया गया है। और मुद्दों की गूढ़ता को देखते हुए 'राज्य सूची' में विषयों के मसौदे बनाने के लिए प्रक्रियाओं निर्देशों को एक 'दस्तावेज' का रूप दे दिया गया है ताकि भविष्य में जो लोग सत्ता संभालें, उन्हें भटकने से रोका जा सके। और इस 'दस्तावेज' को 'जम्मू व कश्मीर के संविधान' का नाम दिया गया है। मैं ऐसा आम आदमी के लिए कह रहा हूं।

हालांकि, इस व्याख्या के बारे में कोई भी वाद-विवाद कर सकता है क्योंकि संविधान शब्द का इस्तेमाल किया गया है। इसी तरह से 'दोहरी नागरिकता', सरकारी नौकरियों में प्रतिबंधित अवसर, राज्य में भौतिक संपत्तियां बनाने पर प्रतिबंध जैसे विषयों को भी ठंडे दिमाग से सुलझाना चाहिए। जम्मू व कश्मीर के संविधान के बनने से पहले ही भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने १९५२ में शेख अब्दुल्ला के साथ एक समझौता (जम्मू व कश्मीर के संविधान सभा के नाम पर) किया था।

इस समझौते के कुछ भाग जम्मू व कश्मीर के संविधान के कुछ खंडों की भावना में अवश्य दिखते हैं जैसे पीआरसी (जम्मू व कश्मीर राज्य के विषय, जम्मू व कश्मीर राज्य ध्वज, सदर-ए-रियासत आदि)। लेकिन अन्य भारतीय राज्यों के लोगों ने (जेएस एसएस बीजेपी को छोड़ कर) अपने नेताओं से उचित समय पर इन प्रावधानों के बारे में नहीं पूछा, जबकि इन लोगों द्वारा यह प्रश्न पूछे जाने की काफी जरूरत थी।

जम्मू व कश्मीर के संविधान (१९५७) के अस्तित्व में आने से पहले ही भारतीय संविधान में एक संविधान संशोधन के जरिए धारा ३५ अ (१९५४) को शामिल किया गया था। धारा ३५ अ के तहत यह कहा गया कि जम्मू व कश्मीर विधान सभा ऐसे प्रावधान कर सकता है जो अन्य भारतीय राज्यों के लोगों के साथ विभेद कर सकते हैं वह भी भारतीय संविधान में कोई प्रावधान किये बिना, जो साफ तौर भारतीय नागरिकों के बीच विभेद का निषेध करता है। जम्मू व कश्मीर के संविधान के खंड-८ और खंड-९ को इसी संदर्भ में देखा जा सकता है।

धारा ३७० को हथियार के तौर पर इस्तेमाल

वक्त की जरूरत है कि जम्मू व कश्मीर राज्य के राजनीतिक व संवैधानिक स्वरूप के बारे में भारतीय संविधान में एक आखिरी बहस की जाये। मीडिया में सामान्य बहस और वाद-विवाद से सवालों का हल नहीं निकलेगा, बल्कि अगर संभव हो तो जम्मू व कश्मीर के मामलों का मीडिया में निबटान बंद किया जाये।

इस तथ्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि १९४७ में हैदराबाद की देशी रियासत भी एक बड़ी रियासत थी जिसके पास अपनी मुद्रा (हालांकि सांकेतिक ही सही), अपना पोस्टल स्टैम्प, अपनी सेना और अपनी एयरलाइन्स थी। यहां तक कि हैदराबाद के निजाम मीर उस्मान अली खान ने अगस्त १९४८ में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में अपना प्रतिनिधि भी भेजा था। सितंबर १९४८ में इसने भारत के सामने अपनी सेना का समर्पण कर दिया और एक साल बाद नवंबर १९४९ में हैदराबाद के निजाम ने भारत के भावी संविधान के प्रति अपना पूर्ण विश्वास स्वीकृति व्यक्त की थी, जिसका आखिरी मसौदा लगभग पूरा ही होने वाला था।

हैदराबाद के साथ कोई मतभेद भ्रम विवाद नहीं छोड़ा गया। तो वह सवाल जो एक बौद्धिक समीक्षा की मांग करता है यह है कि क्यों तत्कालीन जवाहर लाल नेहरू सरकार ने जम्मू व कश्मीर के लिए शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के साथ अलग तरीके से व्यवहार किया? नेहरू के समक्ष कौन सी बाध्यताएं थीं? क्या जम्मू व कश्मीर की सत्ता में बैठे लोगों के साथ कुछ खास हित जुड़े हुए थे कि हैदराबाद की तरह पूर्ण संवैधानिक विलय न किया जा सके (जबकि जम्मू व कश्मीर के महाराजा (हरि सिंह) या तत्कालीन रीजेंट कर्ण सिंह की ओर से कोई ऐसी प्रतिरोध भी नहीं था)? अगर इन सवालों का जवाब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से द्वारा आता है, तो देश के अन्य राज्यों की ही तरह जम्मू व कश्मीर के पूर्ण संवैधानिक विलय की इच्छा जम्मू व कश्मीर के (खास तौर पर कश्मीर घाटी के) लोगों के दिलोदिमाग में जागृत करना मुश्किल नहीं होगा जिन्होंने स्वयं को अब तक भारत के विशिष्ट नागरिक के तौर पर जाना है। साथ ही इससे अलगाववादियों को भी उनका असली चेहरा दिखाने में मदद मिलेगी।

एक अन्य बात जिस पर गंभीरता से विचार किये जाने की जरूरत है वह यह है कि

जम्मू व कश्मीर की संविधान सभा ने फरवरी १९५४ में १९४७ में महाराजा हरि सिंह द्वारा जम्मू व कश्मीर के भारत में किए गए विलय की अभिपुष्टि की थी और इस तरह इस विलय पर जम्मू व कश्मीर के लोगों की ओर से एक औपचारिक मुहर लग गई थी, तो इसके बावजूद जम्मू व कश्मीर के लिए एक 'अलग संविधान' बनाये रखने की जरूरत बाध्यता क्या थी, यह एक ऐसा सवाल है जिसका जवाब मौजूदा परिस्थितियों में खोजना जरूरी है चूंकि दिल्ली की सरकारांध नेताओं ने गंभीरतापूर्वक तर्क के साथ ईमानदारी से उचित तरीके से उन सवालों का जवाब नहीं तलाशा है जो बीते सालों में समय-समय पर जम्मू व कश्मीर की विशेष स्थितिध जम्मू व कश्मीर के सशर्त विलय कश्मीर विवाद राजनीतिक समाधान के नाम पर उठाये गये और जिन्होंने अलगाववादियों और साथ ही साथ मुख्यधारा के कुछ नेताओं को भी पर्याप्त अवसरध आधार उपलब्ध कराये जिससे वे भारत के भीतर व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कुछ समर्थन हासिल कर सकें।

केंद्र व राज्यों के विषयों व अधिकार-क्षेत्र को भारतीय संविधान (१९५०) की धारा २४६ के तहत तीन सूचियों- संघ सूची, राज्य सूची व समवर्ती सूची में बांटा गया है। ऐसी स्थिति में अगर जम्मू व कश्मीर के लिए भिन्न मानदंड की जरूरत थी, तो एक अलग संविधान के नाम पर जम्मू व कश्मीर के लिए अलग अधिकार अधिकार क्षेत्र बनाने के बजाय इस राज्य के लिए संघ सूची व समवर्ती सूची अलग तरीके से बनायी जा सकती थी। जम्मू व कश्मीर के संविधान के नाम पर भारतीय संविधान के तहत जम्मू व कश्मीर को दिये गये अधिकारों ने भारत के लिए अधिक परेशानियां उत्पन्न की हैं और अलगाववादी तत्वों को अपने इस्तेमाल के लिए कुछ आधार भी। साथ ही इससे उन लोगों को भी मौके मिले हैं जो दिल्ली पर उन खास प्रतिबद्धताओं को न मानने का आरोप लगाते हैं जो उस समय की भारत सरकार तत्कालीन प्रधानमंत्री ने कश्मीरियों के साथ १९४७ में किये थे और जिससे कश्मीर की समस्या जस की तस बनी हुई है।

ऐसा कहा जा सकता है कि व्याख्या के लिहाज से धारा ३७० में राज्य सूची और संघ सूची को अलग-अलग करके दिखाया गया है। और मुद्दों की गूढ़ता को देखते हुए विषयों के मसौदे बनाने के लिए प्रक्रियाओं निर्देशों को एक दस्तावेज का रूप दे दिया गया है ताकि भविष्य में जो लोग सत्ता संभालें, उन्हें भटकने से रोका जा सके। और प्रक्रियाओं निर्देशों के इस दस्तावेज को 'संविधान' का नाम दे दिया गया। जम्मू

व कश्मीर के लिए धारा ३७० (६ दशकों के बाद भी जिसे अस्थायी कहा जाता है) का 'जन्मदाता' भारतीय संविधान स्वयं ही है। अतः धारा ३७० या जम्मू व कश्मीर के संविधान को भारतीय संविधान से अलग करके देखा समझा नहीं जा सकता।
ऐसा सोचा स्वीकार किया जा सकता है कि साल १६५० में भारत के राजनीतिक नेतृत्व (कांग्रेस) पर स्वतंत्रता संघर्ष की थकान रही होगी और ऐसे में यह बुद्धिमानी भरी सर्तकता, धूर्तता और कूटनीतिक स्तर पर विस्तारित तरीके से ध्यान नहीं दे सके होंगे। लेकिन विवादों राजनीतिक दोष निकालने में उलझे रहने के बजाय मौजूदा स्थिति में हिंदुस्तानियों को साथ मिल कर उन जानबूझकर अनजाने में की गयी गलतियों की या यूं कहें कि बड़ों की 'सच्चाई' की कीमत चुकानी होगी। निस्संदेह तौर पर कश्मीर के मामलों में देश के वरिष्ठ नेताओं जैसे जवाहर लाल, नरसिम्हा राव, अटल बिहारी वाजपेयी, आई के गुजराल, मनमोहन सिंह आदि द्वारा समय-समय पर दिये गये बयानों के बारे में उचित स्पष्टीकरण व्याख्या दिये जाने की काफी जरूरत है ताकि जम्मू व कश्मीर (खास तौर पर कश्मीर घाटी) के लोगों का भ्रम खत्म हो सके। अतिरिक्त क्षेत्रीय शत्रुओं बाधाकारी तत्वों के साथ लड़ाई लड़ने के साथ साथ हिन्दुस्तान को स्थानीय स्तर पर सामाजिक-बौद्धिक लड़ाई भी लड़नी होगी।

आज की तारीख तक जम्मू व कश्मीर के लिए कोई राज्य सूची नहीं है क्योंकि इस तरह के वर्गीकरण की छाया तक भी भारतीय संविधान की धारा ३७० के प्रावधानों के तहत १६६३ में राष्ट्रपति द्वारा दिये गये आदेश द्वारा औपचारिक तौर पर खत्म कर दी गई थी। राष्ट्रपति द्वारा पहला संविधान संशोधन (जम्मू व कश्मीर के बारे में) आदेश २६ जनवरी १६५० को दिया गया। इसके बाद जम्मू व कश्मीर की संविधान सभा ने ६ फरवरी १६५४ को १६४७ में महाराजा द्वारा जम्मू व कश्मीर के भारत में किए गए विलय की अभिपुष्टि की थी और इस तरह इस विलय पर जम्मू व कश्मीर के लोगों की ओर से एक औपचारिक मुहर लग गई थी। इसके तीन महीने बाद १४ मई १६५४ को राष्ट्रपति ने धारा ३७० के तहत एक अन्य आदेश जारी किया जिसमें १६५२ के उस समझौते की भावना साफ साफ दृष्टिगोचर हुई। यहां इस पूरी बात में यह महत्वपूर्ण है कि जम्मू व कश्मीर के एमएलए एमएलसी, जम्मू व कश्मीर के मंत्री, जम्मू व कश्मीर के न्यायाधीश पद की शपथ लेते हुए जम्मू व कश्मीर के संविधान का नाम लेते हैं। लेकिन यह सब कुछ भारतीय संविधान के प्रावधानों के तहत है, ऐसे में सारा कुछ संवैधानिक तरीके से निबटाना होगा जब

तक लोकतांत्रिक भावनाएं मौजूद हैं।

जम्मू व कश्मीर के संविधान के अंगीकृत किये जाने (१९५७) से काफी पहले तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने १९५२ में शेख मुहम्मद अब्दुल्ला (जिन्हें महाराजा हरि सिंह ने १९४८ में प्रधानमंत्री बनाया था) के साथ एक समझौता किया था, जिसकी कुछ शर्तें बाद में जम्मू व कश्मीर के संविधान का भी हिस्सा बनीं जैसे पीआरसी (जम्मू व कश्मीर के राज्य विषय), जम्मू व कश्मीर के लिए अलग ध्वज आदि। लेकिन इस बात को दरकिनार नहीं किया जा सकता कि अन्य भारतीय राज्यों के लोगों ने (जेएस एसएएस बीजेपी को छोड़ कर) अपने नेताओं से इन प्रावधानों के बारे में नहीं पूछा, जबकि इन लोगों द्वारा यह प्रश्न पूछे जाने की काफी जरूरत थी।इसी तरह, जम्मू व कश्मीर के संविधान के अस्तित्व में आने से पहले ही भारतीय संविधान में धारा ३५ अ को शामिल किया गया था। इस धारा के तहत यह कहा गया कि जम्मू व कश्मीर का संविधान विधान सभा ऐसे प्रावधान कर सकता है जो अन्य भारतीय राज्यों के लोगों के ऊपर जम्मू व कश्मीर के लोगों को प्राथमिकता दे सकते हैं। जम्मू व कश्मीर के संविधान के खंड-८ और खंड-९ को इसी के नतीजे के तौर पर देखा जा सकता है।

हां, यह सत्य है कि जम्मू व कश्मीर के संविधान के खंड ३ में साफ-साफ लिखा गया है कि जम्मू व कश्मीर राज्य भारत का अविभाज्य भाग है और रहेगा। इस तरह के मुद्दों पर राष्ट्रीय स्तर पर (अखिल भारतीय) लोक सभा व राज्य सभा में विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। ऐसा किये बिना उन संवैधानिक दोषों असंगतियों को संवैधानिक तरीके से खत्म नहीं किया जा सकता जो दिल्ली की गतिविधियों की वजह से १९५० के दशक में उत्पन्न हुईं। इससे उन भारत-विरोधी तत्वों पर भी लगाम लगेगी जो कश्मीर के आम आदमी के सामने कश्मीर के मामलों को अपने तरीके से पेश करने में धारा ३७० जम्मू व कश्मीर के संविधान का इस्तेमाल करते हैं।

संसद को जम्मू व कश्मीर की राजनीतिक व संवैधानिक स्थिति पर विचार करना चाहिए, साथ ही इसे स्वायत्तता प्रस्ताव २००० और पीडीपी के स्वशासन की मांग के अलावा जम्मू व कश्मीर राज्य के पुनर्गठन (जरूरत और अन्य तकनीकी बातें) की सलाहों पर भी विमर्श करना चाहिए। इस बात में कोई संदेह नहीं कि इसके बाद

भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि राजनेता संसद में संख्याबल का खेल खेलेंगे। एक बात निश्चित है कि संसद में इस तरह की बहस से १६४७ के विलय की सत्यता के बारे में सभी राजनेताओं को कम से कम अपनी राय जाहिर सोच का खुलासा स्पष्ट तौर पर करना पड़ेगा। विलय से संबंधित मुद्दे कुछ हद तक सुलझेंगे और दृष्टिकोण स्पष्ट होंगे। कश्मीर के आम आदमी को भी सही दिशा हासिल होगी।